प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग गिरगाँव, बम्बई ४

चौथी बार
जनवरी, १९४५

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिन्टिंग प्रेस,
६, केलेवाड़ी गिरगाँव, बम्बई नं० ४

बिन्दोका लल्ला

१

यादव मुखर्जी और माधव मुखर्जी सहोदर भाई नहीं हैं, इसे वे स्वयं तो भूल ही गये थे; बाहरके लोग भी भूल गये थे। गरीब यादवने अनेक कष्ट सहकर अपने छोटे भाई माधवको कानूनकी परीक्षा पास कराई थी, और बड़ी कोशिश करके धनाढ्य जमींदारकी एकमात्र सन्तान बिन्दुवासिनीको वे भ्रातृवधूके रूपमें अपने घर लानेमें समर्थ हुए थे। बिन्दुवासिनी असाधारण रूपवती थी। पहले पहल जिस दिन वह अपना अतुलनीय रूप और दस हजार रुपयेके प्रामेसरी नोट लेकर इस घरमें आई, उस दिन बड़ी बहू अन्नपूर्णाकी आँखोंसे आनन्दाश्रु ढल पड़े थे। घरमें सास-ननद कोई भी नहीं, वे ही घर-मालिकिन थीं। छोटी बहूका मुखड़ा ऊपर उठाकर उस दिन उन्होंने अपने पड़ोसिनोंके सामने बड़े गर्वके साथ कहा था, "घरमें बहू लाई जाय सो ऐसी! बिलकुल लक्ष्मीकी प्रतिमा!"

मगर दो ही दिनमें उन्हें अपनी गलती भास गई। दो ही दिनमें मालूम हो गया कि छोटी बहू जिस माप-तौलसे रूप और रुपया लाई है, उससे चौगुना अहंकार और अभिमान भी साथ लेती आई है। एक दिन बड़ी बहूने अपने पतिको एकान्तमें बुलाकर कहा, "क्योंजी, रूप और रुपयोंकी गठरी देखकर ही बहू घर ले आये, पर यह तो काली नागिन है!"

यादवने इस बातपर विश्वास नहीं किया। वे सिर खुजाते हुए दो-चार बार 'सो तो—', 'सो तो—' कह कहाकर कचहरी चले गये।

यादव अत्यन्त शान्त प्रकृतिके आदमी हैं। ये जमींदारके यहाँ नायब (कारिन्दा) का काम करते थे, और घर आकर पूजा-पाठमें लग जाया करते थे। माधव अपने बड़े भाई यादवसे दस साल छोटा था, वकील होकर हाल ही उसने अपना रोज़गार शुरू किया था।

उसने भी आकर कहा, "भाभी, रुपया ही क्या भइयाके लिए बड़ी चीज हो गई? दो दिन ठहर जाते तो मैं भी तो रोजगार करके ला सकता था!

अन्नपूर्णा चुप हो रही।

इसके सिवा और भी एक आफत यह थी कि छोटी बहूपर शासन करना आसान न था। उसे ऐसी भयानक 'फिट' की बीमारी थी कि दौरा होनेपर उसकी तरफ देखते ही घर-भरका सिर ठनक जाता, और डाक्टरको बिना बुलाये और कोई चारा ही न रहता। लिहाजा यही धारणा सबके मनमें बद्धमूल होकर बैठ गई कि ऐसे साधके ब्याहमें बड़ी गलती हो गई है। सिर्फ यादवने हिम्मत नहीं हारी। वे सबके विरुद्ध खड़े होकर बराबर कहते रहे, "नहीं जी, नहीं, तुम लोग बादमें देखना। मेरी बहूरानीका जगद्धात्री-सा रूप है, सो क्या बिलकुल ही निष्फल जायगा! ऐसा हो ही नहीं सकता।"

एक दिन देखा, कोई एक बात हो जानेपर छोटी बहू मुँह उदास किये चुप बैठी हुई है। मारे डरके अन्नपूर्णाके होश उड़ गये। अचानक उसे न जाने क्या सूझा कि वह कमरेमें दौड़ी चली गई और अपने डेढ़ सालके सोते हुए बच्चे अमूल्य-चरणको उठा लाकर बिन्दोकी गोदमें चलती बनी।

अमूल्य कच्ची नींदमें जग जानेसे जोरसे जोरसे रोने लगा।

बिन्दो जी जानसे अपनेको सम्भालकर और बेहोशीके पंजेसे अपनी रक्षा करके बच्चेको छातीसे लगाकर कमरेमें चली गई।

अन्नपूर्णा ओटमें छिपी हुई यह देखती रही और फिटकी इस महौषधका आविष्कार करके पुलकित हो उठी।

घर-गृहस्थीका सारा भार अन्नपूर्णाके ही सिरपर था, इसलिए वह बच्चेको ठीक तौरसे सम्हाल न कर सकती थी। खासकर, दिन-भर काम-काज करनेके बाद रातको वह सो नहीं पाती तो उसकी तबीयत खराब हो जाया करती, इसलिए बच्चेका भार छोटी बहूने अपने ऊपर ले लिया।

लगभग महीने भर बाद, एक दिन सवेरे बिन्दो बच्चेको गोदमें लिये रसोईघरमें गई और बोली, "जीजी, अमूल्यधनका दूध कहाँ है?"

अन्नपूर्णाने चटसे हाथका काम छोड़कर डरते हुए कहा, "एक मिनट ठहर जा बहिन, अभी गरम किये देती हूँ।"

बिन्दो रसोईघरमें घुसते ही दूध कच्चा धरा देखकर क्रुद्ध हो गई थी। उसने तीखे गलेसे कहा, "कल भी तुमसे कहा था कि मुझे आठ बजेसे पहले ही दूध चाहिए, सो अब नौ बज रहे हैं। इतना-सा काम यदि तुम्हें भारी होता है तो साफ कहती क्यों नहीं, मैं दूसरा रास्ता देखूँ। और, क्यों

मिसरानीजी, तुम्हें भी इतना होश नहीं रहा; घर-भरके लिए जो राँधा जा रहा हैं, सो दो मिनट बाद ही रँध जाता।"

मिसरानी चुप हो रही। अन्नपूर्णाने कहा, "तेरी तरह लड़केको सिर्फ काजल लगाना और टीका देने भरका काम होता, तो हम लोगोंको भी होश रहता। एक मिनटकी भी अब देरी नहीं सही जाती, छोटी बहू?"

छोटी बहूने इसके जवाबमें कहा, "तुम्हें बहुत बड़ी सौगन्द रही अगर फिर किसी दिन तुमने लल्लाके दूधमें हाथ लगाया और मुझे भी कसम है, फिर किसी दिन अगर तुमसे कहा मैंने!"

इतना कहकर उसने बच्चेको धम्म-से जमीनपर बिठा दिया, और दूधकी कड़ाही उठाकर चूल्हेपर चढ़ा दी। इस अचिन्तनीय घटनासे अमूल्य जोरसे रो उठा, और उसका रोना था कि बिन्दोने उसका गाल मसककर डाट दिया, "चुप रह बदमाश, चुप रह, चिल्लाया तो एकदम मार ही डालूँगी।"

बिन्दोकी इस करतूतसे घरकी महरी एकदम वहाँ दौड़ी आई और बच्चेको गोदमें उठाना ही चाहती थी कि बिन्दोने उसे डाट दिया, "दूर हो, सामनेसे दूर हो जा!"

फिर वह आगे न बढ़ सकी, डरके मारे सिटपिटाकर रह गई।

बिन्दो फिर किसीसे कुछ न कहकर रोते हुए बच्चेको गोदमें लेकर दूध गरम करने लगी।

अन्नपूर्णा स्थिर होकर खड़ी रही। कुछ देर बाद बिन्दो जब दूध लेकर चली गई तब उसने मिसरानीको सम्बोधित करके कहा, "सुन ली मिसरानी इसकी बात? उस दिन हँसी हँसीमें कह दिया था न मैंने, अमूल्यको तू ले ले। छोटी बहू उसीके जोरपर आज मुझे भी सौगन्द दे गई!"

कुछ भी हो, अन्नपूर्णाका लड़का बिन्दुवासिनीकी गोदमें जिस तरह खाने-पीने और बड़ा होने लगा उसका फल यह हुआ कि अमूल्य चाचीको 'मा' और माको 'जीजी' कहना सीख गया।

* * *

२

इसके चार-एक साल बाद जिस दिन खूब धूमधामके साथ अमूल्यको पढ़ने बिठाया गया, उसके दूसरे दिन सबेरे अन्नपूर्णा रसोईके काममें

व्यस्त थी, इतनेमें बाहरसे बिन्दुवासिनीने पुकारकर कहा, "जीजी, अमूल्य-धन पाँव छूने आया है, एक बार बाहर तो आओ।"

अन्नपूर्णाने बाहर आकर अमूल्यका ठाठ देखा तो वह दंग रह गई। लड़केकी आँखोंमें काजल, माथेपर टीका, गलेमें सोनेकी जंजीर, सिरपर चोटी बँधे हुए बाल, पीले रंगकी छपी हुई धोती, एक हाथमें सुतलीसे बँधी हुई मिट्टीकी दावात और बगलमें छोटी-सी एक चटाईमें लिपटे हुए थोड़े-से ताड़पत्र।

बिन्दोने कहा, "जीजीके पाँव छूकर पालागन तो करो बेटा!"

अमूल्यने अपनी जननीको प्रणाम किया।

उसके पैरोंमें न जूते थे, न मोज़े, न तरह-तरहकी विलायती ढंगकी पोशाक। अन्नपूर्णाने इस अपूर्व वेश-भूषाको देखकर हँसते हुए कहा, "तुझे इतना आता है छोटी बहू! लड़का शायद पढ़ने जा रहा है?"

बिन्दोने हँसते हुए कहा, "हाँ, गंगा पण्डितकी पाठशालामें भिजवा रही हूँ। असीस दो जीजी, आजका दिन इसकी ज़िंदगीमें सार्थक हो।"

फिर नौकरकी तरफ मुड़कर कहा, "भैरों, पण्डितजीसे मेरा नाम लेकर खास तौरसे कह देना, मेरे लल्लाको कोई मारे-पीटे नहीं। और जीजी, ये पाँच रुपये लो, खूब अच्छी तरह सीधा सजाकर उसमें ये पाँच रुपये रखके कदमके हाथ पण्डितजीके पास भिजवा दो!" कहते हुए उसने गहरे स्नेहसे लल्लाकी मिट्टी ली और उसे गोदमें लेकर चल दी।

अन्नपूर्णाकी दोनों आँखें आँसुओंसे ऊपर तक भर आईं; उसने मिसरानीसे कहा, "लल्लाहीसे फ़ुरसत नहीं, व्यस्त रहती है,—सो भी पेटमें नहीं धरा, नहीं तो न जाने क्या करती।"

मिसरानीने कहा, "इसीसे शायद भगवानने दिया नहीं, अठारह-उन्नीस सालकी हो चुकी।"

बात पूरी न हो सकी। छोटी बहू बच्चेको छोड़कर अकेली लौट आई, बोली, "जीजी, जेठजीसे कहके क्या अपने मकानके सामने एक पाठशाला नहीं खुलवाई जा सकती? मैं सबका सब खर्च दूँगी।"

अन्नपूर्णा हँस दी। बोली, "अभी दो कदम तो गया भी नहीं छोटी बहू, इतनेहीमें तेरी तबीयत बदल गई? न हो तो तू भी जा न, पाठशालामें जाके बैठी रहना।"

बिन्दो शरमा-सी गई, हँसके बोली, "तबीयत नहीं बदली जीजी, मगर

सोचती हूँ, आँखोंसे ओझल रहना एक बात है और आँखोंके सामने रहना दूसरी बात है। संग पढ़नेवाले लड़के ठहरे सब शरारती, उसको छोटा पाकर अगर मारें-पीटें ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "इससे क्या ! लड़के मार-पीट तो किया ही करते हैं। इसके सिवा लड़के तो सभीके समान हैं छोटी बहू;—उनके मा-बाप अगर कड़ी छाती करके पाठशाला भेज सकते हैं, तो तू क्यों नहीं भेज सकती ?"

दूसरोंके साथ तुलना करना बिन्दो कतई पसन्द न करती थी। इसीसे शायद वह मन ही मन असन्तुष्ट होकर बोली, "तुम्हारी बात ही ऐसी होती है जीजी ! मान लो, कोई उसकी आँखमें कलम ही खोंस दे, तब ?"

अन्नपूर्णा उसके मनका भाव समझकर हँस दी, बोली, "तब फिर डाक्टरको दिखाना। पर सच कहती हूँ तुझसे, मैं तो सात दिन सात रात बैठके सोचती तो भी यह आँखमें खोंसा-खोसीकी बात मेरे दिमागमें न आती। इतने लड़के पढ़ते हैं, मैंने तो सुना नहीं कौन किसकी आँखमें कलम खोंसता रहता है।"

बिन्दोने कहा, "तुमने नहीं सुना, तो क्या ऐसी बात हो ही नहीं सकती ? होनहारकी बात कौन कह सकता है ? अच्छी बात है, तुम एक दफे कहके देखो तो सही, उसके बाद जो होगा देखा जायगा।"

अन्नपूर्णाने गम्भीर होकर कहा, "जो होगा सो चौड़े दिखाई देता है। तैंने ठानी है तो क्या विना पूरा किये छोड़ेगी ? पर मैं ऐसी दुनियासे उलटी बात अपने मुँहसे नहीं कह सकती। और तू भी तो बोलती है उनसे, खुद ही कहना न !"

अब तो बिन्दोको गुस्सा आ गया। बोली, "कहूँगी ही तो। इतनी दूर रोज रोज मैं अपने लल्लाको नहीं भेज सकती,—इससे किसीको बुरा लगे या भला, और इससे चाहे उसको विद्या आवे या न आवे। क्यों री कदम, तुझसे कहा था न सीधा दे आनेको ? मुँह फाड़े खड़ी क्या देख रही है ?"

उसका क्रोधका भाव देखकर अन्नपूर्णा व्यस्त होकर बोली, "सीधा दे रही हूँ। एकदम उतावली मत हो जा, छोटी बहू ! अच्छा, क्या तेरा लल्ला भी कभी बड़ा न होगा ? तू क्या हमेशा उसे पल्लेसे ढकके रख सकेगी ? इस बातको सोचती क्यों नहीं ?"

छोटी बहूने इस बातका जवाब न देकर कहा, "कदम, सीधा देकर पंडितजीके पाँवकी धूल जरा लल्लाके सिरसे लगाकर उसे अपने साथ लौटा

लाना और पण्डितजीसे भी जरा शामके वक्त आनेके लिए कहती आना।—जो समझना ही नहीं चाहें, उनको कैसे समझाया जाय? मैं कहती हूँ, छोटा देखकर अगर कोई मार मूर दे तो?—सो कहती हैं, हमेशा क्या तू पहलेसे ढकके रख सकती है?—क्या कर सकती हूँ और क्या नहीं, यह सलाह लेने तो मैं आई नहीं थी।" कहकर वह जवाबके लिए विना ठहरे ही दनाती हुई चली गई।

अन्नपूर्णा दंग होकर जहाँकी तहाँ खड़ी रह गई।

कदमने कहा, "अब खड़ी मत रहो बहूजी, अभी फिर चली आई तो बस। उन्होंने मनमें जब एक बात ठान ली है, तब फिर विधाता भले ही आ जायँ, वह रद थोड़े ही हो सकती है!"

उसी दिन शामके बाद बड़े बाबू अफीम खाकर बिस्तरपर लेटके हुकेकी नली मुँहमें दिये नशेकी पीठपर चाबुक लगा रहे थे, इतनेमें दरवाजेकी साँकल झनझना उठी।

यादवने मुश्किलसे आँखें खोलकर कहा, "कौन?"

अन्नपूर्णाने कमरेमें घुसकर कहा, "छोटी बहू कुछ कहने आई है, सुन लो।"

यादव व्यस्त होकर पूछ उठे, "छोटी बहू!—क्यों बहू, क्या है?"

छोटी बहूपर उनका अत्यन्त स्नेह था। छोटी-बहूने बात नहीं की, उसकी तरफसे अन्नपूर्णाने कह दिया, "उसके लल्लाकी आँखमें पाठशालाके लड़के कहीं कलम न खोंस दें, इसलिए मकानहीमें एक पाठशाला खुलवा देनी होगी।"

यादव हाथके नलको फेंककर शंकित होकर पूछ उठे, "किसने आँखमें मार दिया? कहाँ है, देखूँ?"

अन्नपूर्णाने उनके हाथमें नल थमाते हुए हँसकर कहा, "अभी किसीने मारा नहीं, 'अगर मारे' की बात हो रही है।"

यादवने सुस्थिर होकर कहा, "अच्छा 'अगर कोई मारे' की बात है। मैं समझा, शायद—"

बिन्दो किवाड़की ओटमें खड़ी खड़ी जल-भुनकर खाक हो गई; धीमे स्वरसे बोली, "जीजी, तब तो तुमने कहा था कि ऐसी दुनियासे उलटी बात मैं अपने मुँहसे नहीं कह सकती,—अब क्यों कहने आ गई हो?"

अन्नपूर्णा भी खुद समझ गई थी कि उसके कहनेका ढंग अच्छा नहीं हुआ और उसका फल भी मधुर न होगा। अब इस धीमे स्वरके गूढ़ अर्थको स्पष्ट

हृदयंगम करके वह सचमुच ही डर गई। उसका गुस्सा जा पड़ा बेचारे निरीह पतिपर, उन्हींको लक्ष करके उसने कहा, "अफीमके नशेसे आदमीकी आँखें तो मिच जाती हैं, कान भी बन्द हो जाते हैं क्या? मैंने कहा था क्या, और तुमने सुना क्या!—कहाँ है देखूँ!—मैंने क्या तुमसे यह कहा था कि लल्लाकी आँख फोड़ दी है। मेरी तो सब तरफसे आफत है!"

निर्विरोधी यादवकी अफीमकी पिनक छूटनेकी नौबत आ पहुँची; उन्होंने किंकर्तव्य विमूढ़ होकर कहा, "क्यों, क्या हुआ भाई?"

अन्नपूर्णाने गुस्सेमें कहा, "जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। ऐसे आदमीसे बात करना ही झख मारना है,—मेरे करमका ही दोष है—" कहती हुई वह कमरेसे बाहर निकल गई।

यादवने कहा, "क्या हुआ है बहू रानी, जरा खोलके तो बताओ।"

बिन्दोने दरवाजेकी ओटमें खड़े खड़े आहिस्तेसे कहा, "बाहर भिसौराके पास एक पाठशाला हो जाती तो—"

यादवने कहा, "यह कौन-सी बड़ी बात है बहूरानी! पर उसमें पढ़ायेगा कौन?"

बिन्दोने कहा, "पण्डितजी आये थे,—उन्हें महीनेमें दस रुपये मिल जाया करें तो वे अपनी पाठशाला वहाँसे उठा लायेंगे। मैं कहती हूँ कि मेरे सूदके जमा हुए रुपयोंसे यह सब खर्च दिया जाय।"

यादवने सन्तुष्ट होकर कहा, "अच्छी बात है, कल ही मैं आदमी लगा दूँगा। गंगाराम यहीं अगर अपनी पाठशाला ले आवे, तो अच्छी ही बात है।"

जेठजीका हुक्म पा जानेसे बिन्दोका क्रोध शान्त हो गया, उसने हँसते हुए चेहरेसे रसोईघरमें जाकर देखा। अन्नपूर्णा मुँह फुलाये बैठी है और उसके पास बैठी कदम हाथ-मुँह हिलाती हुई कुछ व्याख्या कर रही है। बिन्दुको घुसते देख तुरन्त ही उसने 'अरी मैया, ये तो—' कहकर अपना वक्तव्य समाप्त कर दिया। बिन्दो समझ गई, उसीकी बातें हो रहीं हैं। उसने सामने आकर कहा, "अरी मैया क्या, कहती क्यों नहीं!"

मारे डरके कदमकी जीभ लड़खड़ा गई। उसने घूँट-सा भर कर कहा, "नहीं जीजी, ये समझ लो कि—बड़ी बहूजीने कहा था न—सो मैंने कहा—क्या नाम—"

बिन्दुने रूखे स्वरसे कहा, "हाँ कहा था, जा, तू अपना काम देख, चल!" कदम चूँ तक न करके भागी वहाँसे जान बचाकर।

तब फिर बिन्दोने अन्नपूर्णासे कहा, "बड़ी मालिकिनके सलाहकार भी खूब हैं! जेठजीसे कहके इनकी तनख्वा बढ़वा देनी चाहिए।"

बिन्दो खुश होनेपर अन्नपूर्णासे 'जीजी' कहती है और गुस्सा हो जानेपर 'बड़ी मालिकिन।'

अन्नपूर्णाने कुढ़कर कहा, "जा न, कह आ जाकर, जेठजी मेरा सिर उतरवा लेंगे! और जेठजी कौनसे कम हैं! उसी वक्त शुरू कर देंगे, 'क्या है बहू रानी, क्या कहती हो,—ठीक बात है!' मैंने बहुत बहुत भाग्य देखे हैं छोटी बहू, पर तेरी-सी बुलन्द तकदीर किसीकी नहीं देखी। कैसी तक़दीर लेकर पैदा हुई थी, घर-भरके सभी जैसे मारे डरके सिटपिटाये रहते हैं!"

बिन्दोको गुस्सा तो आई थी पर अन्नपूर्णाका बात कहनेका ढंग देखकर उसे हँसी आ गई। बोली, "कहाँ, तुम तो नहीं डरती!"

अन्नपूर्णाने कहा, "मैं डरती नहीं! तेरी रणचण्डिका-मूर्ति देखकर जिसकी छातीका खून पानी न हो जाय, है ऐसा कोई अब भी अपनी माके पेटमें? पर इतना गुस्सा अच्छा नहीं छोटे बहू! अभी तक क्या तू नन्हीं सी है? बच्चे होते तो अब तक चार-पाँच बच्चोंकी मा हो जाती, और अकेली तुझहीको क्या दोष दूँ, उस बूढ़े मानसने ही लाड़-प्यार करके तेरा सिर फिरा दिया है!"

बिन्दोने कहा, "तक़दीर लेकर पैदा हुई हूँ, सो बात तो तुम्हारी मानूँगी, जीजी!—धन-दौलत, लाड़-प्यार बहुतोंको मिला करता है, यह कोई बड़ी बात नहीं;—पर ऐसे देवता-से जेठ पानेके लिए बहुत जन्मोंकी तपस्या चाहिए, तब ऐसा फल मिलता है! मेरे भाग्य हैं जीजी, तुम डाह करके क्या करोगी? मगर लाड़ करके मेरा सिर उन्होंने नहीं फिराया,—लाड़ करके अगर किसीने सिर फिराया है तो वह तुम्हींने!

अन्नपूर्णाने हाथ मटकाकर कहा, "मैंने? कोई कहे तो भला! मेरा शासन बहुत कड़ा शासन है। मगर क्या करूँ, मेरी तकदीर ही खोटी है, रौब ही नहीं मानता कोई मेरा!—नौकर-नौकरानी तक मुँहके सामने खड़े होकर बराबरीसे लड़ने लगते हैं, जैसे वे ही मालिक हों और मैं दासी-बाँदी! मैं हूँ इसीसे सह लेती हूँ, और कोई होती—"

जेठानीकी इन उलटी-सीधी बातोंपर बिन्दो खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली, "जीजी, तुम सतजुगकी हो सतजुगकी! क्यों मरनेको इस जुगमें पैदा हुई आकर?—कहाँ, मुझसे तो कोई लड़ता-झगड़ता नहीं!"

कहकर सहसा अन्नपूर्णाके सामने घुटने टेककर बैठ गई और दोनों बाहें उसके गलेमें डालकर कहने लगी, " कोई कहानी कहो, जीजी ! "

अन्नपूर्णाने गुस्सेसे कहा, " चल, हट यहाँसे । "

इतनेमें कदम दौड़ी आई और बोली, " अमूल्यधनने हाथ काट लिया है सरौतेसे,—रो रहा है । "

बिन्दो उसी वक्त गलेसे बाँह निकालकर उठ खड़ी हुई, बोली, " सरौता मिल कहाँसे गया ? तुम सबकी सब कर क्या रही थीं ? "

" मैं उसी कमरेमें बिछौना बिछा रही थी जीजी, मालूम भी नहीं, कब बड़ी बहूके घरमें जाकर—"

अच्छा, सुन लिया,—सुन लिया,—जा यहाँसे " कहती हुई बिन्दु वहाँसे चली गई । कुछ देर बाद लल्लाकी उँगलीपर भींगा कपड़ा लपेटकर उसे गोदमें लिये आई और बोली, " अच्छा जीजी, कितने दिनोंसे मैं कह रही हूँ तुमसे, कि बाल-बच्चोंका घर ठहरा, सरौता-अरौता जरा सम्हालकर ऊँचा रख दिया करो — सो—"

अन्नपूर्णाको और भी गुस्सा आ गया, बोली, " ऐसी बातें तू किया करती है छोटी बहू, जिनका न सिर है, न पैर । इस डरसे कि तेरा लल्ला घरमें घुसकर हाथ काट लेगा, पहलेहीसे सरौता क्या लोहेके सन्दूकमें बन्द करके रख दिया करूँ ? "

" कलसे उसे रस्सीसे बाँध दिया करूँगी, फिर तुम्हारे कमरेमें न घुसा करेगा । " यह कहती हुई बिन्दु बाहर चली गई ।

अन्नपूर्णाने कहा, " सुन लिया री कदम, इसकी जबरदस्तीकी बातें तो सुन जरा । सरौता क्या आदमी सन्दूकमें बन्द करके रखता है ? "

कदम न जाने क्या कहना चाहती थी, पर मुँह फाड़कर रह गई ।

बिन्दो लौट पड़ी, आकर बोली, " फिर अगर कभी तुमने किसी नौकर-नौकरानीको पंच बनाया, तो सच कहती हूँ तुमसे, लल्लाको लेकर मैं मायके चली जाऊँगी । "

अन्नपूर्णाने कहा, " चली जा न । पर याद रखना, सिर पटकके मर जायगी तो भी मैं फिर बुलानेका नाम तक न लूँगी । "

" मैं आना भी नहीं चाहती । " कहकर बिन्दो मुँह फुलाकर चल दी ।

करीब दो घंटे बाद अन्नपूर्णा धप-धप पैर रखती हुई छोटी बहूके कमरेमें पहुँची । घरके एक कोनेमें एक छोटी टेबिलपर माधवचन्द्र मुकद्दमेके कागजात

देख रहे थे, और बिन्दो अपने अमूल्यको लेकर पलंगपर पड़ी आहिस्ते आहिस्ते कहानी कह रही थी। अन्नपूर्णाने कहा, "चल, खा ले।"

बिन्दोने कहा, "मुझे भूख नहीं है।"

लल्लाने झटसे अपनी चाचीके गलेसे चुपटकर कहा, "छोटी मा खायगी नहीं तुम जाओ।"

अन्नपूर्णाने उसे डाट दिया, "तू चुप रह। यह लड़का ही तो सब झगड़ोंकी जड़ है। खूब लाड़ लड़ाती जा अभी छोटी बहू, पीछे मालूम पड़ेगी। तब रोयेगी और कहेगी हाँ, कहा था जीजीने!"

बिन्दुने फुसुर फुसुर करके लल्लाको सिखा दिया, उसने चिल्लाकर कहा, "तुम जाओ न जीजी,—अभी छोटी मा रानीकी कहानी सुना रही हैं।"

अन्नपूर्णाने डाटकर कहा, "भला चाहती है तो उठ आ छोटी बहू, नहीं तो कल तुम दोनोंको न बिदा कर दिया तो मेरा नाम नहीं!" कहकर जैसे आई थी, उसी तरह पैर धरती हुई चली गई।

माधवने पूछा, "आज फिर तुम लोगोंमें क्या हो गया?"

बिन्दुने कहा, "जीजीके गुस्सा हो जानेपर जो होता है, वही। आज मेरा कसूरमें कसूर यह था कि मैंने कह दिया था, बाल-बच्चोंका घर ठहरा, सरौता-अरौता जरा सम्हालकर रखा करो, इसीपर इतना ऊधम हो रहा है।"

माधवने कहा, "अब ज्यादा गड़बड़ न करो, जाओ, भाभी जैसी धमाधम चल रही हैं, उससे अभी भइयाकी आँख खुल जायगी!"

बिन्दो लल्लाको गोदमें लेकर हँसती हुई रसोईघरकी तरफ चल दी।

* * * *

३

एक माके दो बच्चे जैसे अपनी माका आश्रय लेकर बढ़ते रहते हैं, उसी तरह इन दोनों माताओंने एक ही सन्तानके आसरे और भी छह साल बिता दिये। अमूल्य अब बड़ा हो गया है। वह एण्ट्रेन्स स्कूलके दूसरे दरजेमें पढ़ता है। घरपर मास्टर नियुक्त हैं। वे सबेरे पढ़ाकर चले गये थे। उसके बाद अमूल्य बाहर निकला था। आज रविवार है, स्कूल बन्द था।

अन्नपूर्णाने घरमें घुसते ही कहा, "छोटी बहू, क्या करूं बता तो?"

बिन्दो अपने कमरेके फर्शपर सारीकी सारी आलमारी उँड़ेलकर अमूल्यके

लिए पोशाक छाँट रही थी। आज वह चाचाके साथ किसी बड़े आदमी मुवक्किलके घर न्योता जीमने जायगा। बिन्दोने मुँह बिना उठाये ही जवाब दिया, "क्या बताऊँ जीजी?"

उसका मिज़ाज जरा अप्रसन्न था। अन्नपूर्णा रंग-बिरंगी तरह-तरहकी पोशाक देखकर दंग रह गई थी; इसीसे वह उसके चेहरेका भाव न ताड़ सकी। कुछ देर तक चुपचाप देखती रही, फिर बोली, "ये क्या सब लल्लाकी पोशाकें हैं?"

बिन्दुने कहा, "हाँ।"

अन्नपूर्णाने कहा, "कितने रुपये तू फिजूल बहाया करती है। इनमेंसे एककी कीमतसे गरीबोंके यहाँ एक बच्चेके साल-भरके कपड़े-लत्ते बन सकते हैं।"

बिन्दु नाखुश हो गई। फिर भी स्वाभाविक भावसे बोली, "हाँ, सो बन सकते हैं। मगर गरीबों और बड़े-आदमियोंमें थोड़ा-बहुत फ़र्क रहेगा ही, इसके लिए दुख करनेसे क्या होगा जीजी?"

अन्नपूर्णाने कहा, "सो होंगे बड़े आदमी, पर तेरी तो सब बातोंमें ज्यादती होती है।"

बिन्दुने मुँह उठाकर कहा, "क्या कहने आई थीं, सो ही कहो न जीजी, भी मुझे फ़ुरसत नहीं है।"

"तुझे फ़ुरसत कब रहती है भला!" कहकर जिठानी गुस्सा होकर चली गई। भैरों लल्लाको बुलाने गया था। वह घंटे-भर बाद उसे ढूँढ़कर ले आया।

बिन्दुने पूछा, "कहाँ था अब तक?"

अमूल्य चुप रहा।

भैरोंने कहा, "उस मुहल्लेके किसानोंके लड़कोंके साथ गुल्ली-डंडा खेल रहे थे।"

इस खेलसे बिन्दोको बहुत भय था, इसलिए इस खेलके लिए उसने मनाही कर दी थी। सुनकर बोली, "गुल्ली-डंडा खेलनेको तुझसे मना कर दिया था न!"

अमूल्य मारे डरके नीला पड़ गया, बोला, "मैं तो खड़ा था, उन लोगोंने जबरदस्ती मुझे—"

"ज़बरदस्ती तुझे! अच्छा, अभी तो जा, फिर बताऊँगी।" कहकर बिन्दो उसे कपड़े पहनाने लगी।

लगभग दो महीने पहले अमूल्यका जनेऊ हुआ था; इसलिए उसने घुटी चाँदपर टोपी पहननेमें घोर आपत्ति की। मगर बिन्दो कब छोड़नेवाली थी।

उसने जबरदस्ती पहना दी। घुटी चाँदपर जरीदार टोपी पहनकर वह रोने लगा। माधवने कमरेमें घुसते हुए कहा, "अब और कितनी देर होगी जी?"

दूसरे ही क्षण अमूल्यपर निगाह पड़ते ही वे हँसकर बोले, "वाह, ये तो मथुराके राजा श्रीकृष्ण बन गये हैं।"

अमूल्य शरमके मारे टोपी फेंककर पलंगपर जाकर औंधा पड़ रहा।

बिन्दो गुस्सा हो उठी। बोली, "एक तो वैसे ही लड़का रो रहा है, उसपर तुमने—"

माधवने गम्भीर होकर कहा, "रो मत लल्ला, उठ, लोग पागल कहेंगे तो मुझे कहेंगे, तू चल।"

ठीक ऐसी ही बात इसके पहले एक दिन और हो गई थी, और बिन्दो उस दिन बहुत ही नाराज हो गई थी। आज फिर उसी बातकी पुनरावृत्तिसे वह जल-भुनकर बोलीं, "मैं सब काम पागलोंका-सा करती हूँ न?" कहती हुई उठी, लल्लाको उठाकर उसके सिरपर चार-छह पंखेकी डाँड़ियाँ जमा दीं; और फिर कीमती मखमलकी पोशाक खींच खींचकर निकाल फेंकने लगी।"

माधव डरके मारे बाहर चले गये, उन्होंने जाकर भाभीको खबर दी, "सिरपर भूत सवार हो गया है भाभी, एक बार जाकर देखो।"

अन्नपूर्णाने कमरेमें जाकर देखा, बिन्दो पहलेकी पोशाक उतारकर मामूली कपड़े पहना रही है और लल्ला मारे डरके फक हुआ खड़ा है।

अन्नपूर्णाने कहा, "अच्छी तो लग रही थी, छोटी बहू, खोल क्यों दी?"

बिन्दोने लल्लाको छोड़कर सहसा गलेमें साड़ीका पल्ला * डालकर हाथ जोड़ते हुए कहा, "तुम लोगोंके पैरों पड़ती हूँ बड़ी मालकिन, सामनेसे जरा चली जाओ, तुम सबोंकी मध्यस्थताके मारे तो उसकी जान ही निकल जायगी।"

अन्नपूर्णा वाक्शून्य होकर खड़ी रही।

बिन्दो अमूल्यको कान पकड़कर घरके एक कोनेमें खींच ले गई और उसे खड़ा करके बोली, "तुम जैसे नटखट लड़के हो, वैसी ही तुम्हारी सजा होनी चाहिए। दिनभर इसी कमरेमें बन्द रहो, जाओ। जीजी, आओ बाहर। मैं दरवाजा बन्द करूँगी।" कहती हुई बाहर निकलीं और उसने साँकल चढ़ा दी।

---

* देवी देवताओंको नमस्कार करते समय बंगालकी स्त्रियाँ इसी तरह किया करती हैं। इससे विशेष विनय प्रकट होती है।

दोपहरका करीब एक बजा था, अन्नपूर्णासे रहा न गया। वह बोली, "छोटी बहू, सचमुच क्या तू आज लल्लाको खाने न देगी? उसके लिए क्या घर-भर उपासा रहेगा?"

बिन्दोने जवाब दिया, "घर-भरकी इच्छा!"

अन्नपूर्णाने कहा, "यह तेरी कैसी बात है छोटी बहू। घरमें एक तो लड़का है, वह उपासा रहेगा तो,—मेरी-तेरी बात जाने दे, नौकर-चाकर भी कैसे खायँगे, बता तो सही!"

बिन्दोने जिदके साथ कहा, "सो मैं नहीं जानती।"

अन्नपूर्णा समझ गई, बहस करनेसे अब कोई फायदा नहीं। बोली, "मैं कह रही हूँ, बड़ी बहनकी एक बात तो रख। आज उसे माफ कर दे। इसके सिवा पित्त चढ़कर उसकी तबीयत खराब हो गई, तो तुझे ही भुगतना पड़ेगा।"

घामकी तरफ देखकर बिन्दो खुद ही नरम पड़ गई। उसने कदमको बुलाकर कहा, "जा, ले आ उसे, मगर तुम लोगोंसे कहे देती हूँ जीजी, आइन्दा मेरी बातमें कोई बोलेगा तो अच्छा न होगा।"

उस दिन बखेड़ा यहीं तक आकर थम गया।

छोटे भाईकी वकालत चल जानेके बादसे यादव नौकरी छोड़कर अपनी जमीन-जायदादकी देख-भाल करने लगे थे। छोटी बहूके बाबत हाथमें जो दस हजार रुपये आये थे, उन्होंने ब्याजपर लगाकर लगभग दूने कर लिये थे और उन रुपयोंमेंसे कुछ लेकर तथा माधवकी आमदनीपर भरोसा करके करीब पाव कोस दूरीपर एक बड़ा-सा मकान बनवानेका सिलसिला जमा लिया था। करीब दस दिन हुए, वह मकान बनकर तैयार हो गया था। तय हुआ था कि दुर्गापूजाके बाद अच्छा-सा दिन सुधवाकर वहीं जाकर सब रहेंगे। इसलिए एक दिन यादवने भोजन करते हुए छोटी बहूको लक्ष्य करके कहा, "तुम्हारा मकान तो बन गया बहू रानी, अब किसी दिन चलकर देख आओ, कुछ कसर तो नहीं रह गई है?"

बिन्दोको इस बातका अभ्यास-सा पड़ गया था कि वह हजार काम छोड़कर जेठजीके भोजनके समय दरवाजेकी ओटमें बैठी रहे। जेठकी वह देवताकी नाईं भक्ति किया करती थी,—सभी करते थे। वह बोली, "नहीं, कोई कसर नहीं रही।"

यादवने हँसकर कहा, "बिना देखे ही राय दे दी बहूरानी! अच्छा, तो ठीक

है। मगर एक बात है। मेरी इच्छा है कि अपने जितने आत्मीय-स्वजन जहाँ कहीं भी हों, सबको बुलाकर एक शुभ दिन सुधवाकर चले चलें वहाँ। जाकर गृह-देवताकी पूजा करायें,—क्यों ठीक है न ?"

बिन्दोने धीरे-से कहा, "जीजीसे कहूँ, वे जो कहेंगीं सो होगा।"

यादवने कहा, "कहो। मगर तुम्हीं हमारे घरकी लच्छमी हो बहू, तुम्हारी इच्छासे ही सब काम होगा। अन्नपूर्णा पास ही बैठी थी, हँसकर बोली, "अगर कहीं तुम्हारी लच्छमी बहू जरा शान्त होती—"

यादवने कहा, "शान्त होनेकी भला क्या बात है ? बहूरानी तो मेरी साक्षात् जगद्धात्री हैं। वर भी देती हैं, और जरूरत पड़नेपर खड्ग भी उठा लेती हैं। ऐसा ही तो मैं चाहता हूँ। बहूरानीको लानेके बादसे घरमें मेरे जरा भी दुःख-कष्ट नहीं रहा।"

अन्नपूर्णाने कहा, "सो बात तुम्हारी सच्ची है। इसके आनेके पहलेके दिनोंको तो याद करनेसे भी डर लगने लगता है !"

बिन्दोने शरमिन्दा होकर उस बातको दबा दिया, कहा, "आप सबको बुलाइए। अपना वह मकान काफी बड़ा है। किसीको कोई तकलीफ न होगी। चाहें तो वे लोग चार-छै महीने रह भी सकते हैं।"

यादवने कहा, "ऐसा ही होगा बहू, कल ही मैं बुलवानेका इन्तजाम करता हूँ।"

* * * *

४

इनकी फुफेरी बहन एलोकेशीकी अवस्था अच्छी न थी। यादव उसके लिए अकसर आर्थिक सहायता भेजा करते थे। कुछ दिनोंसे वह पत्रोंमें अपने लड़के नरेन्द्रको यहीं रखकर पढ़ाने-लिखानेकी इच्छा जाहिर कर रही थी। इतनेमें एक दिन वह अपने लड़केको लेकर उत्तरपाड़ासे आ भी गई। उसके पति प्रियनाथ वहाँ क्या करते हैं, सो ठीक तौरसे कोई नहीं कह सकता,—दो-तीन दिन बाद वे भी आ पहुँचे। नरेन्द्रकी उमर सोलह-सत्रह सालकी होगी। वह चौड़ी किनारीकी धोती घुमाकर पहना करता था और दिनमें आठ-दस बार बाल सँभालता था। जुल्फ उसकी सचमुच ही देखने-लायक थीं। आज शामके बाद रसोईघरके बरामदेमें सब इकट्ठे बैठे थे, और एलेकेशी अपने पुत्रके असाधारण रूप-गुणोंका बखान कर रही थी।

बिन्दोने पूछा, "नरेन्द्र, किस क्लासमें पढ़ते हो बेटा?"

नरेन्द्रने कहा, "फोर्थ क्लासमें। रायल रीडर, ग्रामर, जियोग्राफी, अरथ-मेटिक—और भी कितनी ही चीजें हैं डेसिमेल टेसिमेल, सो सब तुम समझोगी नहीं, माँई।"

एलोकेशीने गर्वके साथ अपने पुत्रके चेहरेकी तरफ देखकर बिन्दोसे कहा, "अरे एक-आध किताब थोड़े ही है छोटी बहू, किताबोंका पहाड़ है,—कल किताबें बक्ससे निकालकर अपनी माँइयोंको जरा दिखा तो देना बेटा।"

नरेन्द्रने सिर हिलाकर कहा, "अच्छा, दिखाऊँगा।"

बिन्दोने कहा, "पास होनेमें तो अभी देर है।"

एलोकेशीने कहा, "देर रहती थोड़े ही छोटी बहू, देर नहीं रहती। अब तक एक ही क्यों, चार चार पास हो जाता। सिर्फ कलमुँहे मास्टरकी वजहसे ही नहीं हो रहा है। उसका सत्यानाश हो जाय, मेरे लालको वह कैसी जहरकी निगाहसे देखता है, सो वही जाने। इसको वह दरजा चढ़ाता थोड़े ही है, चढ़ता नहीं। मारे जलनके वह बरसके बरस उसी एक ही किलासमें पड़ा रहने देता है।"

बिन्दोने विस्मित होकर कहा, "नहीं तो, ऐसा तो नहीं होता।"

एलोकेशीने कहा, "सरासर हो रहा है, होता क्यों नहीं! मास्टर सब एका करके घूस चाहते हैं। मैं गरीब ठहरी, घूसके रुपये कहाँसे लाऊँ, बताओ!"

बिन्दु चुप रही। अन्नपूर्णाने हृदयसे दुःखित होकर कहा, "इस तरह भला कहीं आदमीके पीछे लगा जाता है! यह क्या अच्छा काम है! लेकिन हमारे यहाँ ये सब बातें नहीं हैं। हमारा लल्ला तो हर साल अच्छी अच्छी किताब इनाममें पाता है, मगर कभी घूस-फूस कुछ नहीं देनी पड़ती।"

इतनेमें अमूल्य कहींसे आकर धीरे-से अपनी छोटी-माकी गोदमें बैठ गया। बैठते ही छोटी बहूके गलेमें बाँह डालकर कान ही कानमें बोला, "कल रविवार है छोटी मा, आज मास्टरजीको चले जानेके लिए कह दो न।"

बिन्दुने हँसकर कहा, "इस लड़केको देख रही हो बीबीजी, इसे कहानी सुननेको मिल जाय, तो फिर उठना किसे कहते हैं जानता ही नहीं,—कदम, मास्टरजीसे कह तो आ, लल्ला आज नहीं पढ़ेगा।"

नरेन्द्रने आश्चर्य-चकित होकर कहा, "यह क्या रे अमूल्य, इतना बड़ा होकर अब भी औरतोंकी गोदमें जाकर बैठता है?"

बिन्दूने हँसकर कहा, "क्या सिर्फ यही करता है? अब भी यह रातको—"

अमूल्य व्याकुल होकर हाथसे उसका मुँह बन्द करके बोला "कहना नहीं, छोटी मा, कहना नहीं!"

बिन्दुने नहीं कहा, पर अन्नपूर्णाने कह दिया। बोली, "अब भी रातको यह अपनी छोटी माके साथ सोता है।"

बिन्दुने कहा, "सिर्फ सोता ही थोड़े है जीजी, सारी रात चिमगादड़की तरह चिपटा रहता है।"

अमूल्यने मारे शरमके अपनी छोटी माकी छातीमें मुँह छिपा लिया।

नरेन्द्रने कहा, "छि छि, कैसा है रे तू! तू अँग्रेज़ी पढ़ता है?"

अन्नपूर्णाने कहा, "पढ़ता क्यों नहीं! इस्कूलमें अँग्रेजी ही तो पढ़ता है।"

नरेन्द्रने कहा, "ऊँह, अँग्रेज़ी पढ़ता है। अच्छा, 'इंजिनके' स्पेलिंग बतावे तो सही, देखूँ?—सो तो बता चुका।"

एलोकेशीने कहा, "ये सब कठिन बातें हैं, भला बच्चा है अभी, कैसे बता सकता है?"

अन्नपूर्णाने कहा, "अच्छा लल्ला, बताना तो?"

मगर अमूल्यने किसी तरह ऊपर मुँह उठाया ही नहीं।

बिन्दोने उसका माथा अपनी छातीसे चिपटाकर कहा, "तुम सबने मिलकर उसे लज्जित कर दिया, अब वह कैसे बतायेगा?",

इसके बाद एलोकेशीकी तरफ देखकर कहा, "अबकी साल यह इम्तिहान देगा। मास्टरजीने कहा है, लल्लाको बीस रुपया इनाम मिलेगा। उन रुपयोंसे यह अपने चाचाकी तरह एक घोड़ा खरीदेगा।"

बात सच्ची होनेपर भी मजाकके तौरपर सब हँसने लगे।

एलोकेशीने बिन्दोको लक्ष्य करके कहा, "मेरा नरेन्द्रनाथ सिर्फ पढ़ने लिखनेमें ही तेज नहीं है, यह थ्येटरमें ऐसा ऐक्टिङ्ग करता है कि लोग देखकर आँखोंके आँसू नहीं रोक सकते। तबकी बार सीता बनकर कैसा किया था, दिखा न बेटा, माँइयोंको एक बार दिखा तो दे!"

नरेन्द्रने उसी वक्त घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, ऊँचे नाकके सुरमें शुरू कर दिया, "प्राणेश्वर! कैसे कुक्षणमें दासी तुम्हारी—"

बिन्दो व्याकुल हो उठी, बोली, "अरे ठहर ठहर, चुप रह, जेठजी ऊपर मौजूद हैं।"

नरेन्द्र चौंककर चुप हो गया।

अन्नपूर्णा जरा-सा सुनकर ही मुग्ध हो गई थी, बोली, "सुन लेंगे तो सुन लेने दे। यह तो ठाकुरजीकी कथा है, अच्छी ही बात तो है छोटी बहू।"

बिन्दोने नाखुश होकर कहा, "तो तुम्हीं सुनो ठाकुरजीकी कथा, मैं उठी जाती हूँ।"

नरेन्द्रने कहा, "तो रहने दो, मैं सावित्रीका पार्ट करता हूँ।

बिन्दोने कहा, "नहीं।"

इस कण्ठ-स्वरको सुनकर अब जाकर अन्नपूर्णाको होश हुआ कि बात बहुत दूर तक पहुँच गई है, और यहीं उसका अन्त नहीं होगा। एलोकेशी नई आई है, वह भीतरकी बात न समझ सकी। बोली, "अच्छा, अभी रहने दे। मरदोंके चले जानेपर फिर किसी दिन दोपहरको हो सकेगा।"

"और गाना-बजाना भी क्या कम सीखा है? दमयन्तीने जो रोते हुए गाना गाया था, उसे एक बार गाकर सुनाना तो कभी बेटा, उसे सुनकर तेरी माँई फिर छोड़ेगी थोड़े ही तुझे!"

नरेन्द्रने कहा, "अभी गाऊं?"

मारे गुस्सेके बिन्दोके बदनमें आग-सी लग रही थी, वह कुछ बोली नहीं।

अन्नपूर्णा झटपट कह उठी, "नहीं नहीं, गाना-वाना अभी रहने दो।"

नरेन्द्रने कहा, "अच्छा, वह गाना मैं अमूल्यको सिखा दूँगा। मैं बजाना भी जानता हूँ। 'त्रेटेक ताक' बजाना बड़ा मुश्किल है माँई।— अच्छा, उस पीतलके बर्तनको उठा देना जरा, दिखा दूँ।"

बिन्दो लल्लाको उठनेका इशारा करके बोली, "जा लल्ला, घरमें जाकर पढ़ तो।"

लल्ला मुग्ध होकर सुन रहा था, उसकी उठनेकी तबीयत न थी। चुपके-से बोला, "और थोड़ी बैठो न छोटी मा।"

बिन्दो मुँहसे कोई बात न कहकर उसे उठाकर अपने साथ कमरेमें ले गई। अन्नपूर्णा समझ गई कि सहसा वह क्यों ऐसी हो गई; और यह भी स्पष्ट समझ गई कि इस डरसे कि कहीं संगतके दोषसे लल्ला बिगड़ न जाय, नरेन्द्रका यहाँ रहकर पढ़ना-लिखना भी पसन्द न करेगी। इससे वह उद्विग्न हो उठी, बोली, "बेटा नरेन, तुम अपनी छोटी माँईके सामने ये ऐक्टींग-फेक्टींग सब मत करना। गुस्सैल-मिजाजकी ठहरीं, इन सब बातोंको वे पसन्द नहीं करतीं।"

एलोकेशीने आश्चर्यके साथ पूछा, "छोटी बहूको ये सब बातें अच्छी नहीं लगती क्या? इसीसे इस तरह उठके चली गई हैं, ऐं?"

अन्नपूर्णाने कहा, "हो सकता है। और एक बात है बेटा, तुम अपना खाना-पीना और पढ़ना-लिखना अच्छी तरह करना। ऐसी कोशिश करना जिससे महतारीका दुःख दूर हो। तुम लल्लाके साथ ज्यादा मिलना जुलना नहीं बेटा वह बच्चा है, तुमसे बहुत छोटा ठहरा। अच्छा।"

यह बात एलोकेशीको अच्छी नहीं मालूम हुई। बोली, "सो तो ठीक ही है! गरीबका लड़का है, इसे गरीबोंकी तरह ही रहना चाहिए। पर तुमने छेड़ा ही है तो मैं कह दूँ भाभी, अगर अमूल्य तुम्हारा नन्हा-सा बच्चा है तो मेरा नरेन ही ऐसा कौन-सा बूढ़ा हो गया? एक-आध सालके बड़ेको बड़ा नहीं कहा जाता और इसने क्या कभी बड़े आदमियोंके लड़के नहीं देखे, क्या यहीं आकर देख रहा है? इसके थ्येटरमें तो न जाने कितने राजा-महाराजाओंके भी लड़के मौजूद हैं!"

अन्नपूर्णाके अप्रतिभ होकर बोली, "नहीं बीबीजी, सो मैंने नहीं कहा,—मैं तो कहती हूँ कि—"

"और कैसे कहोगी, बड़ी बहू? हम लोग बेवकूफ हैं,—सो क्या इतनी बेवकूफ हूँ कि इतनी बात भी नहीं समझ सकती? अरे, भइयाने कहा था कि नरेन यहीं रहकर पढ़ेगा, इसीसे ले आई हूँ। नहीं तो क्या वहाँ हम लोगोंके दिन कटते नहीं थे!"

अन्नपूर्णा मारे शरमके गड़ गड़ गई, बोली, "भगवान जानते हैं, बीबीजी, मैंने यह बात नहीं कही, मैं कह रही थी कि जिससे माँका दुःख दूर हो, ऐसा–"

एलोकेशीने कहा, "अच्छा, सो ही सही, सो ही सही। जा रे नरेन, तू बाहर जाकर बैठ, बड़े आदमियोंके लड़केसे मिलना जुलना नहीं।" यह कहकर उन्होंने अपने लड़केको उठाया, और खुद भी उठकर चल दीं।

अन्नपूर्णा आँधीकी तरह बिन्दोके कमरेमें जा पहुँची और रुआसी-सी होकर कहने लगी, "क्यों री, तेरे लिए क्या नाते रिश्तेदारी भी तोड़ देनी पड़ेगी? क्यों वहाँसे उठ आई तू, बता तो सही?"

बिन्दोने अत्यंत स्वाभाविक तौरसे जवाब दिया, "क्यों, बन्द क्यों करोगी जीजी, नाते-रिश्तेदारोंको लेकर तुम मौजसे घरमें रहो, मैं अपने लल्लाको लेकर भाग जाऊँ,—यही न कहती हो?

"भाग कहाँ जायगी, सुनूँ तो सही?"

बिन्दोने कहा, "जाते वक्त तुम्हें पता बतला जाऊँगी, सोच मत करो।"

अन्नपूर्णाने कहा, "सो मालूम है, जानती हूँ। जिससे पाँच आदमियोंके

सामने मुँह न दिखाया जा सके, तो तू बिना किये मानेगी थोड़े ही। इस बहूके मारे मेरी तो देह जल भुनकर खाक हो गई। " कहती हुई बाहर निकली जा रही थी, इतनेमें माधवको घरमें घुसते देख फिर जल उठी, " नहीं लालाजी, तुम लोग और कहीं जाकर रहो, नहीं तो इस बहूको विदा कर दो। मुझसे अब रक्खी नहीं जाती, सो आज तुमसे साफ कहे देती हूँ! " यह कहकर वह चली गई।

माधवने आश्चर्य-चकित होकर अपनी स्त्रीसे पूछा, " बात क्या है? "

बिन्दोने कहा, " मैं नहीं जानती, जिठानीने कह दिया है, हम लोगोंको बिदा हो जाना चाहिए। "

माधवने आगे कुछ नहीं कहा। वे टेबिलपरसे अखबार उठाकर बाहरवाले कमरेमें चले गये।

* * * *

५

बीबीजी देखनेमें भोली-सी भले ही मालूम पड़ती हों, पर असलमें वे भोली नहीं थी। उन्होंने ज्यों ही देखा कि निःसन्तान छोटी बहूके पास काफी रुपया है, त्यों ही वे चटसे उस ओर झुक गईं और हर रातको सोते वक्त बिला नागा अपने पतिको डाँटने-फटकारने लगीं, " तुम्हारे कारण ही मेरा सब गया। तुम्हारे पास यों ही पड़ी न रहकर अगर मैं यहाँ आकर रहती तो आज राजाकी माँ होती। मेरे ऐसे सोनेके चन्दा-से लालको छोड़कर क्या उस काले कलूटे लड़केको छोटी बहू—" कहकर एक गहरी और लम्बी उसासके द्वारा उस काले-कलूटेकी सारी परमायुको कतई उड़ाकर ' गरीबोंके भगवान हैं ' कहकर उसका उपसंहार करती और फिर चुपचाप सो जाया करतीं। प्रियनाथ भी मन ही मन अपनी बेवकूफीपर अफसोस करते हुए सो जाया करते। इसी तरह इस दम्पत्तिके दिन कट रहे थे, और छोटी बहूकी तरफ बीबीजीका स्नेह-प्रेम बाढ़के पानीकी तरह तेजीसे बढ़ता जा रहा था।

आज दोपहरको वे कहने लगीं, " ऐसे बादल-से काले बाल हैं छोटी-बहू तुम्हारे, पर कभी तुमको जूड़ा बाँधते नहीं देखा। आज जमींदारके घरकी औरतें घूमने आयेंगी, लाओ जूड़ा बाँध दूँ। "

बिन्दोने कहा, " नहीं बीबीजी, माथेपर मुझसे कपड़ा नहीं रखा जाता, लड़का बड़ा हो गया है, देखेगा! "

बीबीजी दंग रह गईं, बोलीं, "यह कैसी बात कर रही हो तुम, छोटी बहू ! लड़का बड़ा हो गया है, इससे बहू-बिटिया जूड़ा नहीं बाँधेगी ! मेरा नरेन्द्रनाथ तो, दुश्मनोंके मुँहपर राख पड़े, उससे और भी छै महीने बड़ा है, सो क्या मैं बाल बाँधना छोड़ दूँ ! "

बिन्दोने कहा, " तुम क्यों छोड़ने लगीं बीबीजी, नरेन बराबर देखता आ रहा है, उसकी बात जुदी है। लेकिन लल्ला अगर आज अचानक देखे कि जूड़ा बँधा है, तो मुँह बाये देखता रह जायगा। मालूम नहीं, शायद शोर मचाये या क्या करे,—तब फिर छि छि, बड़ी शरमकी बात होगी ! "

अन्नपूर्णा सहसा इसी तरफसे निकली, बिन्दोकी तरफ देखकर अचानक खड़ी हो गई और बोली, " तेरी आँखें छलछला क्यों रही हैं री छोटी बहू ? आ तो तेरी देह देखूँ। "

बिन्दो एलोकेशीके सामने अत्यन्त लज्जित हो उठी, बोली, " रोज रोज देहका क्या देखोगी ? मैं क्या नन्हीं-सी बच्ची हूँ, जो तबीयत खराब होनेसे समझ ही न पाऊँगी ? "

अन्नपूर्णाने कहा, " नहीं, तू बूढ़ी है। मेरे पास तो आ, भादों-क्वाँरका महीना है, बखत अच्छा नहीं है। "

बिन्दोने कहा, " हरगिज नहीं आऊँगी। कहती हूँ, कुछ नहीं हुआ; मजेमें हूँ, फिर भी कहती हो पास आओ। "

" देखना, छिपाना मत कहीं। " कहकर अन्नपूर्णा सन्दिग्ध-दृष्टिसे देखती हुई चली गई।

एलोकेशीने कहा, " बड़ी बहूके कुछ बायकी सनक भी है, क्यों ? "

बिन्दो क्षण-भर स्थिर रहकर बोली, " ऐसी सनक भगवान करें सबको रहे, बीबीजी ! "

एलोकेशी चुप हो रही।

अन्नपूर्णा कोई एक चीज हाथमें लिये फिर उसी रास्तेसे लौट रही थी, बिन्दोने बुलाकर कहा, " जीजी, सुनो सुनो, जूड़ा बँधवाओगी ? "

अन्नपूर्णा मुड़कर खड़ी हो गई। क्षण-भर चुपचाप देख-भालकर सब बात समझकर एलोकेशीसे बोली, " मैंने बहुत कहा है बीबीजी, उससे कहना-सुनना फिजूल है। इतने बाल हैं, बाँधेगी नहीं; इतने कपड़े-गहने हैं, पहनेगी नहीं; इतना रूप है, सो एक बार अच्छी तरह देखेगी भी नहीं। इसकी

सब बातें दुनियासे न्यारी हैं। लड़का भी वैसा ही है। उस दिन लल्ला मुझसे कहता क्या है छोटी-बहू,—कहता है, कपड़े-अपड़े पहननेसे क्या होता है? छोटी-माँके भी तो इतने हैं, पहनती हैं क्या वे?”

बिन्दोने गर्वके साथ मुँह उठाकर हँसते हुए कहा, “मगर देखो जीजी, लड़केको अगर दस-बीसमें एक,—बड़ा बनाना हो, तो माको दुनियासे न्यारी होनेकी जरूरत है। अगर तब तक जिन्दी रही जीजी, तो देख लेना तुम, देशके लोग हाथ उठाकर कहेंगे कि यह अमूल्यकी माँ है।” कहते कहते उसकी आँखोंमें पानी भर आया।

अन्नपूर्णाने यह देखकर स्नेहके साथ कहा, “इसीलिए तो तेरे लल्लाके बारेमें हम कोई कुछ कहती नहीं। भगवान् तेरी मनोकामना पूरी करें; पर इतनी बड़ी आशाको कि लड़का बड़ा होगा और दस-बीसमें एक बनेगा, मैं अपने मनमें जगह नहीं देती।”

बिन्दोने आँचलसे आँखें पोंछकर कहा, “पर इसी एक आशाको लेकर ही तो मैं जी रही हूँ, जीजी।” बाप रे! सहसा सारी देहमें उसके रोंगटे खड़े हो गये; उसने लज्जित होकर जबरदस्ती हँसते हुए कहा, “नहीं जीजी, इस आशापर अगर किसी दिन चोट पड़ी, तो मैं पागल हो जाऊँगी।”

अन्नपूर्णा सन्न रह गई। यह बात नहीं कि वह अपनी देवरानीके मनकी बात जानती न हो, परन्तु उसकी आशा-आकांक्षाकी ऐसी उग्र प्रतिच्छाया उसने किसी भी दिन अपनेमें स्पष्ट रूपसे नहीं देखी थी। आज उसे होश हुआ कि क्यों बिन्दो अमूल्यके बारेमें ऐसी यक्षकी तरह सजग रहती है,—ऐसी प्रेतकी तरह सतर्क! अपने पुत्रकी इस सर्वमंगलाकांक्षिणीके चेहरेकी तरफ देखकर अनिर्वचनीय श्रद्धाकी मधुरिमासे उसका मातृ-हृदय भर आया। उसने निकलते हुए आँसुओंको छिपानेके लिए मुँह फेर लिया।

एलोकेशीने कहा, “सो होने दो छोटी बहू, आज तुम्हारे—”

बिन्दुने चटसे बाधा देकर कहा, “हाँ बीबीजी, आज जीजीका जूड़ा बाँध दो,—इस घरमें आकर आज तक कभी देखा नहीं—” कहकर मुसकराती हुई चली गई।

पाँच-छह दिनके बाद एक दिन सवेरे इस घरका पुराना नाई यादव बाबूकी हजामत बनाकर ऊपरसे उतर रहा था, अमूल्यने आकर उसका रास्ता रोक लिया और कहा, “कैलास भइया, मेरे नरेन्द्र भइया जैसे बाल बना सकते हो?”

नाईको बड़ा आश्चर्य हुआ, बोला, "कैसे बाल, भइयाजी?"

अमूल्यने अपने सिरपर जगह जगह इशारा करके दिखाते हुए कहा, "देखो, यहाँ बारह आने, यहाँ छै आने, यहाँ दो आने, और यहाँ गरद-नके पास एकदम बारीक करके छाँट सकोगे?"

नाईने हँसते हुए कहा, "नहीं भइयाजी, वैसे तो मेरे बापसे भी न बनेगा।"

अमूल्यने छोड़ा नहीं। साहसके साथ कहा, "यह मुश्किल नहीं है कैलास भइया,—यहाँ बारह आने, यहाँ छै आने—"

नाईने छुटकारा पानेकी तरकीब निकालकर कहा, "मगर आज बार क्या है? तुम्हारी छोटी माँका हुकम पाये बिना नहीं छाँट सकता भइयाजी!"

अमूल्यने कहा, "अच्छा ठहरो, मैं पूछे आता हूँ।" कहकर एक कदम आगे बढ़कर ही फिर लौट आया, बोला, "अच्छा तुम अपनी छतरी मुझे दे दो, नहीं तो तुम भाग जाओगे।" कहकर वह जबरदस्ती छतरी छीनकर भाग गया।

फिर आँधीकी तरह अपने छोटी माँके कमरेमें घुसते ही बोला, "छोटी माँ, जरा जल्दी आओ न बाहर?"

छोटी माँ अभी तुरन्त ही नहा-धोकर पूजापर बैठ रही थी, व्यस्त होकर बोली, "अरे छूना मत, छूना मत, पूजा करती हूँ।"।

"पूजा पीछे करना छोटी माँ, एक बार बाहर चलकर हुकम दे आओ, नहीं तो वह बाल नहीं छाँटता, बाहर खड़ा है।"

बिन्दुको कुछ आश्चर्य हुआ। उसके बाल छँटवानेके लिए हमेशा मार-पीट करनी पड़ती है, आज वह अपनी इच्छासे बाल क्यों छँटवाना चाहता है। समझमें न आनेसे वह बाहर निकल आई, आते ही नाईने कहा, "बड़ी कड़ी फरमाइश है माँजी, नरेन्द्र बाबूकी तरह बारह आने, छै आने, तीन आने, दो आने, एक आने बाल छाँटने होंगे; सो क्या मैं छाँट सकूँगा?"

अमूल्यने कहा, "खूब छाँट सकोगे! अच्छा ठहरो, नरेन्द्र भइयाको बुला लाऊँ?" कहकर दौड़ा चला गया।

नरेन्द्र घरपर न था। कुछ देर ढूँढ-ढाँढ़कर वह वापस चला आया और बोला, "है नहीं अभी; अच्छा न सही छोटी माँ, तुम खड़ी रहकर दिखा दो न—अच्छी तरह देखना—यहाँ बारह आने, यहाँ छै आने, यहाँ दो आने, यहाँ बिलकुल छोटे।"

उसकी व्यग्रता देखकर बिन्दो को हँसी आ गई, बोली, "अभी पूजा करनी है रे!"

पूजा पीछे करना, नहीं तो छू दूँगा।"

बिन्दुको और कोई उपाय न दीखा, खड़ा रहना पड़ा।

नाई बाल छाँटने लगा। बिन्दोने आँखोंसे इशारा कर दिया,—उसने सब बराबर एक-से छाँट दिये। अमूल्यने सिरपर हाथ फेरके खुश होकर कहा, "बस, ठीक है।" कहकर उछलता हुआ चला गया।

नाईने छतरी बगलमें दाबकर कहा, "मगर कल माजी इस घरमें घुसना मुश्किल हो जायगा!"

मिसरानी थाली परोसकर खानेको बुला रही थी, बिन्दु रसोई-घरमें एक तरफ बैठी कटोरेमें दूध भर रही थी, इतनेमें सुना कि लल्ला घर-भरमें चाचाका बाल झाड़नेका ब्रश ढूँढ़ता फिर रहा है। थोड़ी देर बाद वह रोता हुआ आया और बिन्दोकी पीठपर झुककर बोला, "कुछ भी नहीं हुआ, छोटी माँ। सब खराब कर दिये हैं,—कल उसे मैं मार ही डालूँगा।" अब तो बिन्दो अपनी हँसी न रोक सकी। अमूल्यने पीठ छोड़कर मारे गुस्सेसे रोते कहा, "तुम क्या अन्धी थीं? आँखोंसे दिखाई नहीं देता तुम्हें?"

अन्नपूर्णा रुलाईकी आवाज़ सुनकर रसोईमें आ पहुँची और सब सुन-सुनाकर बोली, "इसमें हो क्या गया, कल ठीकसे छाँटनेके लिए कह दूँगी।"

अमूल्यने और भी गुस्सा होकर कहा, "कल कैसे बारह आने होंगे? यहाँ बाल ही कहाँ हैं?"

अन्नपूर्णाने शान्त करनेके लिए कहा, "बारह आने न सही, आठ आने दस आने तो हो सकते हैं।

"खाक होंगे। आठ आने दस आनेका क्या फैशन है? नरेन्द्र भइयासे पूछो न, बारह आने चाहिए यहाँ!"

उस दिन अमूल्यने अच्छी तरह रोटी भी न खाई, फेंक-फाँककर उठके चला गया।

अन्नपूर्णाने कहा, "तेरे लड़केको जुल्फें रखनेका शौक कबसे हो गया री!"

बिन्दो हँस दी, मगर दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर एक उसास भरकर बोली, "जीजी, बात तो मामूली-सी है, इससे हँस जरूर रही हूँ, पर डरके मारे भीतरसे मेरी छाती सूखी जा रही है,—सभी बातें इसी तरह शुरू हुआ करती हैं।"

अन्नपूर्णासे भी आगे बोला न गया।

* * *

दुर्गा-पूजा आ गई। उस मुहल्लेके जमींदारोंके घर आमोद-प्रमोदका काफी आयोजन हुआ था। दो दिन पहलेहीसे नरेन्द्र उसमें मगन हो गया। सप्तमीकी रातको लल्ला आकर छोटी बहूके पीछे पड़ गया, छोटी मा, 'यात्राX' हो रही है, देखने जाऊँ?"

छोटी माँने कहा, "हो रही है, या होगी रे?"

अमूल्यने कहा, "नरेन्द्र भइया कहता है, रातके तीन बजेसे शुरू होगी।"

"अभीसे सारी रात ओसमें पड़ा रहेगा? सो नहीं होगा। कल सवेरे अपने चाचाके साथ जाना, बहुत अच्छी जगह मिलेगी।"

अमूल्य रोनी-सी सूरत बनाकर बोला, "नहीं, तुम भेज दो। चाचा शायद जायँगे नहीं, और गये भी तो कितनी अबेरसे जायँगे।"

बिन्दोने कहा, "तीन-चार बजे तो शुरू होगी, तभी नौकरके साथ भेज दूँगी, अभी सो जा।"

अमूल्य गुस्सा होकर बिछौनेके एक किनारे दीवारकी तरफ मुँह करके पड़ रहा। बिन्दो उसे खींचने गई, तो वह हाथ हटाकर कड़ा होकर पड़ा रहा। इसके बाद कुछ देरके लिए शायद सब सो-से गये थे;—बाहरकी बड़ी घड़ीकी आवाजसे अमूल्यकी उद्विग्न नींद टूट गई! वह कान खड़े करके गिनने लगा। एक, दो, तीन, चार—भड़भड़ाकर वह उठ बैठा और बिन्दोको जोरसे झकझोर कर बोला, 'उठो उठो, छोटी माँ, तीन-चार बज गये। बाहरकी घड़ीमें बजने लगे—पाँच, छह, सात, आठ, अमूल्य रो दिया, बोला, "सात तो बज गये, कब जाऊँगा?" बाहरकी घड़ीमें तब बजते ही जाते थे—नो, दस, ग्यारह, बारह! घड़ी बारह बजाके थम गई। अमूल्य अपनी गलती समझके लज्जित होकर चुपचाप सो गया।

कमरेके उस तरफवाले पलंगपर माधव सोया करते हैं। शोर-गुलकी वजहसे उनकी भी नींद उचट गई थी।

जोरसे हँसकर वे बोले, "क्या हुआ रे लल्ला।"

लल्लाने मारे शरमके उत्तर नहीं दिया।

बिन्दोने हँसकर कहा, "आज उसने जिस तरह मुझे जगाया है, घर-द्वारमें

X 'यात्रा' बिना सीन-सीनरीके नाटकको कहते हैं।

आग लग जानेपर भी कोई ऐसे नहीं जगाता।"

अमूल्यको निस्तब्ध पड़ा देख उसे दया आ गई। उसने कहा, "अच्छा जा, पर किसीसे लड़ाई-दंगा मत करना।"

इसके बाद भैरोंको बुलाकर लालटेनके साथ उसे भेज दिया।

दूसरे दिन दिनके दस बजे 'यात्रा' देखकर प्रसन्न चित्तसे लल्ला घर लौटा; आते ही चाचाको देखकर बोला, "कहाँ तुम तो गये नहीं?"

बिन्दोने पूछा, "कैसी देखी रे?"

"बहुत अच्छी, छोटी माँ!—चाचा, आज शामको बढ़िया नाच होगा। कलकत्तासे दो नाचनेवाली आई हैं। नरेन्द्र भइया देख आया है उन्हें, ठीक छोटी माँ सरीखी हैं,—बहुत अच्छी हैं देखनेमें,—वे नाचेंगी, बाबूजीसे भी कह दिया है।"

"बहुत अच्छा किया—" कहके माधव ठहाका मारकर हँसे पड़े।

मारे गुस्सेके बिन्दोका चेहरा सुर्ख हो उठा। बोली, "अपने गुण-खान भानजेकी बात सुन ली?"

फिर लल्लासे बोली, "तू अब बिलकुल वहाँ मत जाना, हरामजादे बदमाश! किसने कहा तुझसे कि मेरे सरीखी हैं?—नरेन्द्रने?"

अमूल्यने डरते हुए कहा, "उसने देखा है जो।"

"कहाँ है नरेन्द्र?—अच्छा, आने दे उसे!"

माधवने हँसीको रोकते हुए कहा, "पागल हो तुम! भइयाने सुन लिया है, अब हल्ला मत करो।"

लिहाजा बिन्दो बातको खुद पी गई और भीतर ही भीतर जलने लगी।

शाम होते ही अमूल्य आकर अन्नपूर्णाके पीछे पड़ गया, "जीजी, पूजावालोंके यहाँ नाच देखने जाऊँगा, देखके अभी लौट आऊँगा।"

अन्नपूर्णा काममें व्यस्त थी, उसने कहा, "अपनी माँसे पूछ, जा।"

अमूल्य जिद करके लगा, "नहीं जीजी, अभी लौट आऊँगा, तुम कह दो, जाऊँ!"

अन्नपूर्णाने कहा, "नहीं रे नहीं, वह गुस्सैल वैसे ही है, उसीसे पूछके जा!"

अमूल्य रोने लगा, धोतीका पल्ला पकड़कर खींचा तानी करने लगा, "तुम छोटी माँसे मत कहना। मैं नरेन्द्र भइयाके साथ जाता हूँ,—अभी लौट आऊँगा।"

अन्नपूर्णाने कहा, "संग अगर जाय तो—"

बात खत्म भी न होने पाई कि अमूल्य चटसे दौड़कर भाग गया।

घंटे-भर बाद अन्नपूर्णाके कानमें भनक पड़ी कि बिन्दो लल्लाको तलाश रही है। सुनके वह चुप रही। ढूँढ़-खोज जब क्रमशः बढ़ने ही लगी तब उसने बाहर आकर कहा, "कहीं नाच हो रहा है, नरेन्द्रके संग वही देखने गया है,—अभी लौटनेको कह गया है, तू डर मत।"

बिन्दोने पास आकर पूछा, "किसने जानेको कहा है, तुमने?"

इस बातकी डरके मारे अन्नपूर्णा मंजूर न कर सकी कि अमूल्य बिना पूछे ही अपने आप चला गया है, उसने कहा, "अभी आ जायगा।"

बिन्दोका चेहरा स्याह पड़ गया, वह वहाँसे चली गई। थोड़ी देर बाद घर आते ही अमूल्यने ज्यों ही सुन कि छोटी माँ बुला रही थी, वह चुपसे सीधा अपने पिताके बिस्तरपर जाकर पड़ रहा।

दीएके उजालेमें बैठे, आँखोंपर चश्मा लगाकर यादव भागवत पढ़ रहे थे, मुँह उठाकर बोले, "कौन है रे, लल्ला!"

लल्लाने उत्तर नहीं दिया।

कदमने आकर कहा, "छोटी माँ बुला रही हैं, चलो।"

अमूल्य अपने पिताके पास जाकर उनसे सटकर बैठ गया, बोला, "बाबूजी तुम चलकर पहुँचा दो, चलो न।"

यादवने आश्चर्यान्वित होकर कहा, 'मैं पहुँचा आऊँ! क्यों, क्या हुआ है कदम!"

कदमने सब बात समझा दी।

यादव समझ गये कि इस बातपर कलह अवश्यम्भावी है। एकने मनाही की है, एकने आज्ञा दी है।

यादव अमूल्यको साथ लेकर छोटी बहूके कमरेके बाहर खड़े होकर पुकारकर बोले, "अबकी बार माफ कर दो बहूरानी, यह कह रहा है, 'अब ऐसा नहीं करेगा।'"

उसी रातको दोनों बहुएँ खानेको बैठीं, तो बिन्दोने कहा, "मैं तुम्हारे ऊपर गुस्सा नहीं कर रही जीजी, मगर अब यहाँ मेरा रहना नहीं हो सकता,—नहीं तो लल्लाकी बिलकुल रेढ़ बैठ जायगी, एकदम बिगड़ जायगा। मैं अगर मना न करती, तब भी एक बात थी। मगर तबसे मैं सिर्फ यही सोच रही हूँ कि मना कर देनेपर भी इतना बड़ा दुःसाहस उसे हुआ कैसे? इसपर उसकी शरारती बुद्धी तो देखो! मेरे पास नहीं आया, आया तुम्हारे पास पूछने। घर आकर जैसे

ही सुना कि मैं बुला रही थी, त्यों ही चटसे पहुँच गया जेठजीके पास और उन्हें अपने संग लिवाता लाया ! नहीं जीजी, अब तक ये सब बातें नहीं थीं—मैं बल्कि कलकत्तेमें मकान किराये पर लेकर रहूँ सो अच्छा, मगर एक ही लड़का ठहरा, वह भी अगर बिगड़ जाय, तो उसे लेकर मैं जिन्दगीभर आँसुओंमें नहीं नहा सकती । "

अन्नपूर्णा उद्विग्न हो उठी, बोली, " तुम लोग चले जाओगे तो मैं ही भला कैसे अकेली रह सकती हूँ, बता ? "

बिन्दो कुछ देर चुप रहकर बोली, " सो तुम जानो । मैं जो करूँगी, सो तुमसे कह चुकी । बहुत वाहियात लड़का है यह नरेन्द्र । "

" क्यों, क्या किया नरेन्द्रने ? और मान ले अगर ये दोनों भाई होते, तो फिर क्या करती ? "

बिन्दोने कहा, " तो आज उसे नौकरसे हाथ पैर बँधवाकर और जल-बिछूटी* लगवाकर घरसे निकाल बाहर करती । इसके सिवा ' अगर ' के हिसाबसे काम नहीं होता, जीजी,—उन लोगोको तुम छोड़ दो ! "

अन्नपूर्णा मन ही मन नाखुश हुई । बोली, " छोड़ना न छोड़ना क्या मेरे हाथ है छोटी बहू ? जो उन्हें लाये हैं, उनसे कह न जाकर,—योंही मुझे नाम मत धर । "

" ये सब बातें जेठजीसे कहूँ किस तरह ? "

" जिस तरह और सब बातें कहती है, उसी तरह कह जाकर । "

बिन्दोने अपने आगेसे थाली खिसकाकर कहा, " मुझे अबोध मत समझो जीजी, मेरी भी सत्ताईस-अट्ठाईसकी उमर हो चली । घरके नौकर-चाकरोंकी बात नहीं है, बात है अपने नाते-रिश्तेदारोंकी, तुम्हारे जीते जी ये सब बातें उनसे कहूँगी, तो जेठजी गुस्सा न होंगे ? "

अन्नपूर्णाने कहा, " हाँ, नाराज जरूर होंगे, पर मैं कहूँगी तो जनम-भर मेरा मुँह भी न देखेंगे । हजार हो, हम लोग दूसरी हैं, वे भाई-बहिन हैं,—इस बातको क्यों नहीं सोचतीं ? इसके सिवा मैं बूढ़ी ठहरी । इस छोटी-सी बातपर नाचने लगूँ तो लोग पागल न कहेंगे ? "

बिन्दो अपनी थालीको और भी जरा धकेलकर गुम्म होकर बैठ रही ।

अन्नपूर्णा समझ गई कि वह सिर्फ जेठजीके डरसे चुप रह गई है । बोली, " हाथ समेटे बैठी रह गई जो,—खानेकी थालीने क्या अपराध किया है ? "

---

* एक तरहकी पत्ती, जिसके शरीरसे लगते ही बड़ी जोरकी खुजली उठती है

बिन्दो सहसा उसास लेकर कहा, " मैं खा चुकी । "

अन्नपूर्णाको उसका रुखदेखकर फिर कहनेकी हिम्मत न पड़ी ।

सोने गई, तो बिन्दो बिस्तरपर अमूल्यको न देखकर लौट आई और जिठानीसे बोली, " वह गया कहाँ ? "

अन्नपूर्णाने कहा, " आज, मालूम होता है, मेरे बिछौनेपर पड़ा सो रहा होगा,—जाऊँ, उठा दूँ जाकर "

" नहीं नहीं, रहने दो । " कहकर बिन्दो मुँह फुलाकर चली गई ।

आधी रातको अन्नपूर्णाकी बुलाहटसे बिन्दोकी सतर्क नींद टूट गई ।

" क्या है जीजी ? "

अन्नपूर्णाने बाहरसे कहा, " किवाड़ खोलके अपना लड़का सम्हाल तू । इतनी शैतानी मेरे बाप आ जायँ तो उनसे भी न सही जाय । "

बिन्दोके किवाड़ खोलते ही, उसने अमूल्यके साथ घरमें घुसते ही कहा, " छोटी बहू, ऐसा तो मैंने लड़का ही नहीं देखा । रातके दो बज रहे हैं, एक बार पलक भी नहीं मारने दी ! कभी कहता है, मच्छर काटते हैं, कभी कहता है, पानी पीऊँगा, कभी—बयार करो,—नहीं छोटी बहू, मैं दिन-भर काम धन्धा करते करते थक जाती हूँ, रातको बिना सोये तो मैं जी नहीं सकती । "

बिन्दोके हँसकर हाथ बढ़ाते ही लल्ला उसकी गोदमें जाकर समा गया, और छातीपर मुँह रखकर एक मिनिट-भरमें सो गया । माधवने अपने उधरके बिस्तरेपरसे मज़ाकमें कहा, " शौक पूरा हो गया, भाभी ? "

अन्नपूर्णाने कहा, " मैंने शौक नहीं किया लालाजी, आप ही खुद माके डरके मारे वहाँ घुसकर सो रहा था । पर हाँ, मुझे सबक जरूर मिल गया । और, कैसी शरमकी बात है लालाजी, मुझसे कहता है, तेरे पास सोनेमें शरम लगती है । "

तीनों हँस पड़े । अन्नपूर्णाने कहा, " अब नहीं, बहुत रात हो गई, जाती हूँ, जरा सो लूँ चलकर । " कहकर चली गई ।

* * * *

दसेक दिन बाद बिन्दोके मा-बापने तीर्थ-यात्राको जानेके पहले लड़कीको देखनेके लिए पालकी भेज दी । बिन्दो अपनी जिठानीसे अनुमति लेकर दो-तीन दिनके लिए अमूल्यसे छिपकर मायके जानेकी तैयारी करने लगी । इतनेमें बगलमें किताबें दबाये स्कूल जानेके लिए तैयार अमूल्य भी वहाँ आ पहुँचा । थोड़ी देर पहले वह बाहर रास्तेके किनारे एक पालकी रखी देख

आया था। अब सहसा छोटी माँके पैरोंपर नजर पड़ते ही वह ठिठककर खड़ा हो गया और बोला, "पैरोंमें महावर क्यों लगाया है, छोटी माँ?"

अन्नपूर्णा मौजूद थी, हँस दी।

बिन्दोने कहा, "आज लगाना होता है।"

अमूल्यने वार वार आपाद-मस्तक निरीक्षण करके कहा, "और इतने गहने क्यों पहने हैं?"

अन्नपूर्णा मुँहपर पल्ला डालकर बाहर निकल गई।

बिन्दोने अपनी हँसी दबाकर कहा, "न जाने कब तेरी बहू आके पहनेगी इससे क्या हम अभीसे गहने नहीं पहनें रे!—जा, तू स्कूल जा।"

अमूल्यने इस बातपर कान न देकर कहा, "जीजी इतनी हँसती क्यों हैं? मैं तो आज स्कूल नहीं जाऊँगा, तुम कहाँ जाओगी?"

बिन्दोने कहा, "अगर जाऊँ भी तो क्या तेरा हुकम लेना पड़ेगा?"

"मैं भी जाऊँगा" कहकर वह किताबें लेकर चल दिया!

अन्नपूर्णाने कमरेमें घुसकर कहा, "मैंने सोचा भी नहीं था कि वह इतनी आसानीसे स्कूल चला जायगा। मगर कैसा सियाना है, देखा, कहता है, महावर क्यों लगाया है? इतने गहने क्यों पहने हैं? पर मैं कहती हूँ, लिये जा उसे साथ, नहीं तो स्कूलसे लौटकर तुझे न देखेगा तो बड़ा ऊधम मचायेगा।"

बिन्दोने कहा, "तुमने क्या समझ रक्खा है जीजी, वह स्कूल गया होगा? हरगिज नहीं! यहीं कहीं छिपा बैठा होगा, देखना, ऐन वक्तपर हाजिर हो जायगा।"

ठीक यही हुआ। वह छिपा हुआ था कहीं, बिन्दो अन्नपूर्णाके पैर छूकर पालकीमें बैठ ही रही थी कि इतनेमें न जाने कहाँसे निकलकर वह उसका पल्ला पकड़के खड़ा हो गया। देवरानी-जिठानी दोनोंकी दोनों हँस पड़ी।"

अन्नपूर्णाने कहा, "चलते वक्त अब मार-पीट मत कर, ले जा साथ।"

बिन्दोने कह, "सो तो जैसे ले गई,—पर वहाँ कहीं भी मैं फिर एक क़दम हिल नहीं सकूँगी, यह तो बड़ी मुश्किलकी बात है!"

अन्नपूर्णाने कहा, "जैसा किया है, वैसा ही तो होगा!—लल्ला, रह न जा तू दो दिन मेरे ही पास।"

लल्लाने सिर हिलाकर कहा, "नहीं नहीं, तुम्हारे पास नहीं रह सकता—" और पालकीमें जाकर बैठ गया।

* * * *

६

बिन्दो मायकेसे लौट आई, उसके दसेक दिन बाद एक दोपहरको अन्नपूर्णाने उसके कमरेमें घुसते हुए कहा, " छोटी बहू ! "

छोटी बहू तब ढेरके ढेर कपड़ोंके सामने स्तब्ध होकर बैठी थी।

अन्नपूर्णाने कहा, " धोबी आया है क्या ? "

छोटी बहू कुछ बोली नहीं। अन्नपूर्णा अब उसके चेहरेकी तरफ देखकर डर गई। उद्विग्न होकर उसने पूछा, " क्या हुआ है री ? "

बिन्दोने उँगलीसे जले हुए सिगरेटोंके छोटे छोटे टुकड़े दिखाकर कहा, " लल्लाके कुरतेकी जेबमेंसे ये निकले हैं ! "

अन्नपूर्णा दंग होकर खड़ी रह गई।

बिन्दो सहसा रोकर कहने लगी, " तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ जीजी, उन लोगोंको बिदा कर दो; न हो तो, हम लोगोंको ही और कहीं भेज दो। "

अन्नपूर्णासे कुछ जवाब देते न बना। और भी कुछ देर चुपचाप खड़ी रह कर वह चली गई।

तीसरे पहर अमूल्य स्कूलसे आकर जल-पान करके खेलने चला गया। बिन्दोने उससे कुछ भी नहीं कहा। भैरों नौकर शिकायत करने आया, नरेन्द्रबाबूने विना कसूरके उसे चाँटा मारा है।

बिन्दोने झुँझलाकर कहा, " जीजीसे जाकर कह। "

अदालतसे लौटनेके बाद माधव कपड़े बदलते हुए कुछ मजाक करने चले थे कि फटकार खाकर चुप रह गये। अदृश्यमें कितने घने बादल मड़रा रहे हैं, सो इस घरमें अन्नपूर्णा ही अकेली समझ सकी। उत्कण्ठासे सारी शाम छटपटाती रहकर, मौकेसे अकेलेमें पाकर उसने छोटी बहूका हाथ पकड़कर विनतीके स्वरमें कहा, " हजार हो, है तो वह तेरा ही लड़का, अबकी बार तू उसे माफ कर दे। बल्कि एकान्तमें बुलाकर उसे डाँट-डपट दे। "

बिन्दोने कहा, " मेरा लड़का नहीं है, इस बातको मैं भी जानती हूँ और तुम भी जानती हो। फिर झूठमूठ बात बढ़ानेकी जरूरत क्या है, जीजी ? "

अन्नपूर्णाने कहा, " मैं नहीं, तू ही उसकी माँ है; मैंने तुझे ही तो दे दिया है। "

" जब छोटा था, खिलाया पिलाया है। अब बड़ा हो गया है, अपना लड़का तुम ले लो,—मुझे रिहाई दो। " कहकर बिन्दो चली गई।

रातको रोनी-सी सूरत लेकर अमूल्य अन्नपूर्णाके पास सोने आया।

अन्नपूर्णा भीतरी रहस्य समझकर झुँझलाकर बोली, "यहाँ क्यों जा यहाँसे,—जा कहती हूँ!"

अमूल्यने मुड़कर देखा, उसके पिता सो रहे हैं; वह कोई बात कहे बिना ही धीरेसे चला गया।

सवेरे कदम रसोई-घरमें जूठे बरतन उठाने गई, तो देखा कि लल्ला बरामदेके एक कोनेमें लकड़ी और कण्डोंपर पड़ा सो रहा है। वह दौड़ी गई और बिन्दोको उठा लाई। अन्नपूर्णा भी बिस्तरसे उठकर बाहर आ रही थी, पास आकर खड़ी हो गई।

बिन्दोने तीखे स्वरमें कहा, रातको जिठानीजीने शायद दुतकारा दिया होगा। इसके रहनेसे शायद नींदमें विघन जो पड़ता है, क्यों न!"

लड़केकी हालत देखकर क्षोभ और दुःखसे उसकी आँखोंमें भी आँसू उमड़े आ रहे थे; किन्तु बिन्दोके निष्ठुर तिरस्कारसे वह जल-भुन गई, बोली, "अपना कसूर तू दूसरेके सिर मढ़कर ही खुश होती है।"

बिन्दो लल्लाको उठाने चली तो देखा कि उसकी देह गरम है,—बुखार आ गया है। बोली, "रात-भर क्वाँर-कार्तिककी ओसमें बुखार तो आयेगा ही। अब अच्छा हो जाय तो जानमें जाव।"

अन्नपूर्णाने व्यग्रताके साथ झुककर कहा, "बुखार आ गया,—कहाँ देखूँ?"

बिन्दोने झटकेसे उसका हाथ हटाकर कहा, "बस, अब देखनेकी जरूरत नहीं।"

यह कहकर सोते हुए लड़केको स्वच्छन्दतासे गोदमें उठाकर और अन्नपूर्णाकी तरफ एक बार विषैली निगाह फेंककर वह अपने कमरेमें चली गई।

पाँच ही छः रोजमें अमूल्य अच्छा हो गया, पर जिठानीके अपराधको बिन्दोने माफ नहीं किया। उसी दिनसे उससे वह अच्छी तरह बोलती तक नहीं।

अन्नपूर्णा मन ही मन सब कुछ समझ गई, पर फिर भी मौन बनी रही। इस अन्यायको कि सबके सामने सारा कसूर बिन्दोने उसीपर मढ़ दिया, वह भी भूल न सकी। इसी बातको एक दिन न मालूम किस बातचीतके सिलसिलेमें वह एलोकेशीसे कह बैठी, "उसे बुखार तो छोटी बहूकी वजहसे ही आया था। यही उसका सौभाग्य है कि मरा नहीं।"

एलोकेशीने इस बातको बिन्दोसे कहनेमें रंचमात्र भी देर नहीं की।

बिन्दोने मन लगाकर सुनी, पर कहा कुछ नहीं। इस बातको भी कि, उसने सुन लिया है एलोकेशीके सिवा और किसीने नहीं जाना। बिन्दोने जिठानीसे कतई बोलना बन्द कर दिया।

बहुत दिनोंसे नये मकानमें चीज-वस्त भेजी जा रही-थी कल सबेरे ही नये मकानमें चला जाना होगा। यादव बच्चोंको लेकर उस मकानमें थे, और माधव मुकद्दमेके कामसे बाहर गये हुए थे,—यहाँ वह भी नहीं थे। इतनेमें यहाँ (पुराने मकानमें) एक बड़ी भारी घटना होगई। शामको मास्टर पढ़ाने आये थे। न जाने क्या सोचकर बिन्दोने उन्हें अपने पास बुलवा लिया। कहा, " कलसे उस मकानमें जाकर पढ़ाइएगा। "

मास्टर 'जो आज्ञा' कहकर चलने लगा, तो बिन्दोने फिर पूछा, " आपका छात्र आजकल पढ़ता-लिखता कैसा है ? "

मास्टरने कहा, " पढ़ने-लिखनेमें तो बराबर अच्छा रहा है, हर साल ही तो वह अव्वल आता है। "

बिन्दोने कहा, " सो तो आता है। लेकिन आजकल चुरट पीना जो सीख गया है ? "

मास्टरने आश्चर्य-चकित होकर कहा, " चुरट पीना सीख गया है ? "

दूसरे ही क्षण वह खुद ही बोला, " कुछ ताज्जुब नहीं, लड़के देखादेखी सब कुछ सीख जाया करते हैं। "

" किसकी देखादेखी सीखा है ? "

मास्टर चुप रहा। बिन्दोने कहा, " उसके बापसे यह बात कह दीजिएगा। "

मास्टरने सिर हिलाकर कहा, " हाँ, देखिए न , पाँच-सात दिन पहलेकी बात है। उसी दिन स्कूलके रास्तेमें एक उड़िया मालीके बगीचेमें घुसकर, उसकी बेवक्तकी कच्ची अँबिया तोड़ तोड़कर, पेड़-पौधे उखाड़-उखाड़कर और उसे मार-पीटकर एक बावेला मचा दिया। "

बिन्दु साँस रोके हुए बोली, " फिर ? "

" मालीने हेड-मास्टरसे जाकर कह दिया। उन्होंने दस रुपये जुरमाना करके और वह उसे देकर शान्त किया। "

बिन्दो इस बातपर विश्वास न कर सकी। बोली, " मेरा लल्ला था ? रुपये उसे मिले कहाँसे ? "

मास्टरने कहा, " सो नहीं मालूम, मगर था वह भी। आपके नरेंद्र-बाबू भी

थे, और भी स्कूलके तीन-चार बदमाश लड़के थे। यह बात मैंने हेडमास्टर साहबके मुँहसे सुनी है।"

बिन्दोने कहा, "रुपये भी वसूल हो गये?"

"जी हाँ, सो भी सुना है।"

"अच्छा, आप जाइए।" कहकर बिन्दो वहीं बैठ रही। उसके मुँहसे अस्फुट स्वरमें सिर्फ इतना ही निकला, "मुझे बिना बताये उसे रुपये दे दिये!—इतनी हिम्मत इस घरमें किसने की?"

एक तो उसका वैसे ही मन रुग्ण था, उसपर जीजीसे बातचीत बन्द है, उसके ऊपर इस समाचारने उसे हिताहित-ज्ञान शून्य बना दिया।

वह उठकर रसोई-घरमें घुस गई। अन्नपूर्णा रातके लिए तरकारी बना रही थी, मुँह उठाकर उसने छोटी बहूके बादल-घिरे चेहरेकी तरफ देखा।

बिन्दोने पूछा, "जीजी, इस बीचमें लल्लाको रुपये दिये थे?"

अन्नपूर्णा ठीक यही आशंका कर रही थी, डरसे उसका गला सूख गया; मुलामियतके साथ बोली, "किसने कहा?"

बिन्दोने कहा, "यह जरूरी बात नहीं, जरूरी बात यह है कि उसने क्या कहकर लिये और तुमने क्या समझकर दिये?"

अन्नपूर्णा खामोश रही।

बिन्दोने कहा, "तुम चाहतीं नहीं कि मैं उसपर कड़ाई करूँ, इसीलिए मुझसे छिपाया है। लल्ला और चाहे जो कुछ करे, पर बड़ोंके सामने झूठ नहीं बोलेगा। यह सच है या नहीं कि तुमने जान-बूझकर दिये हैं?"

अन्नपूर्णाने धीरेसे कहा, "सच है। मगर अबकी उसे माफ कर बहिन, मैं माफी माँगती हूँ।"

बिन्दोकी छातीके भीतर आग-सी जल रही थी। उसने कहा, "सिर्फ अबकी बार माफ करूँ। नहीं, आजसे हमेशाके लिए माफ करती हूँ। अब कभी न कहूँगी। अब बात भी न करूँगी। मैं यह नहीं सह सकती कि वह इस तरह थोड़ा थोड़ा करके आँखोंके सामने जहन्नुमको जाय। इससे तो अच्छा यही कि बिलकुल ही चला जाय। लेकिन तुम्हारी इतनी हिम्मत!"

अन्तिम बात अन्नपूर्णाको तीक्ष्ण रूपसे चुभ गई, फिर भी वह निरुत्तर होकर बैठी रही। मगर बिन्दो जितनी ज्यादा बोल रही थी, उतना ही उसका क्रोध भी उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। उसने चिल्लाकर कहा, "सब बातोंमें

तुम अबोध बनकर कह देती हो, अबकी बार माफ कर। पर दोष उसका उतना नहीं जितना तुम्हारा है। तुम्हें मैं नहीं माफ करूँगी।"

घरके नौकर और नौकरानियाँ भी ओटमें खड़ी सुन रहीं थीं।

अन्नपूर्णासे अब सहा नहीं गया, उसने कहा, "क्या करेगी? फाँसी चढ़ा देगी?"

वह्निमें आहुति पड़ गई। बिन्दो बारूदकी तरह भक्-से जलकर बोली, "वही तुम्हारे लिए ठीक सजा है!"

यही तो अपराध हुआ कि अपने लड़केको दो रुपये दे दिये?"

किस बातमें क्या बात आ पड़ी?—बिन्दो असल बातको भूलकर कह बैठी, "सो भी क्यों दोगी? बिगाड़नेके लिए रुपये आये कहाँसे?"

अन्नपूर्णाने कहा, "रुपये तू नहीं बिगाड़ती?"

"मैं बिगाड़ती हूँ तो अपने रुपये बिगाड़ती हूँ; तुम किसके बिगाड़ती हो, कहो भला?"

अब तो अन्नपूर्णाको भयंकर रूपसे क्रोध आ गया। वह गरीब-घरकी लड़की थी, इसलिए उसने समझा कि बिन्दोका इशारा उसी तरफ है। चटसे खड़ी होकर बोली, "माना कि तू बहुत बड़े आदमीकी लड़की है, लेकिन इसी बात पर तू ऐसा अहंकार मत कर कि और कोई दो रुपये भी नहीं दे।"

बिन्दो बोली, "ऐसा अहंकार मैं नहीं करती; लेकिन तुम भी सोच देखो जरा, एक पैसा भी जो देती हो, सो किसका देती हो?"

अन्नपूर्णा चिल्ला उठी, "किसका पैसा देती हूँ? तेरे मुँहमें जो आता है सो ही कह देती है! जा, दूर हो जा मेरे सामनेसे।"

बिन्दोने कहा, "दूर, मैं रात बीतते ही हो जाऊँगी, पर किसका पैसा खर्च करती हो, सो सुझाई नहीं देता? किसकी कमाईसे खाती—पहरती हो, सो जानती नहीं?"

बात कह डालनेके बाद सहसा बिन्दो स्तब्ध हो रही।

अन्नपूर्णाका चेहरा फक पड़ गया था। उसने क्षण-भर एकटक छोटी बहूके मुँहकी ओर देखकर कहा, "तुम्हारे पतिकी कमाई खाती हूँ। मैं तुम्हारी दासी हूँ, बाँदी हूँ, वे तुम्हारे नौकर-चाकर हैं। यही तो तू कहना चाहती है? सो इतने दिनोंसे बताया क्यों नहीं?"

अन्नपूर्णाके ओठ काँप उठे। उसने दाँतोंसे ओठ दबाकर क्षण-भर स्थिर

रहकर कहा, " कहाँ थी तू छोटी बहू, जब छोटे भाईको पढ़ानेके लिए उन्होंने दो धोती कभी एकसाथ खरीदके नहीं पहनी ? कहाँ थी तू जब घर जल जानेपर पेड़तले एक छाक राँध-खाकर उन्होंने इस पैतृक मकानको खड़ा किया था ? "

कहते कहते उसकी दोनों आँखोंसे टप टप आँसू गिरने लगे। आँचलसे उन्हें पोंछकर वह फिर बोली, " उन्हें अगर मालूम होती तुम लोगोंके मनकी बात, तो वे कभी इस तरह अफीम चढ़ाकर आँखें मूँदे हुक्केकी नली मुँहमें दे आरामसे दिन न काट सकते। ऐसे आदमी वे नहीं हैं। उन्हें पहचानते हैं तेरे मालिक, उन्हें जानते हैं स्वर्गके देवता। आज मेरे बहाने तैंने उनका अपमान किया ! "

पतिके गर्वसे अन्नपूर्णाकी छाती फूल उठी। बोली, " अच्छा ही हुआ जो जता दिया। सतीने आत्म-हत्या की थी, मैं कसम खाती हूँ कि किसीके घर रसोई बनाके पेट पाल लूँगी, पर तेरा अन्न अब न खाऊँगी। तैंने किया क्या,—उनका अपमान किया ! "

ठीक इसी समय यादव आँगनमें आकर खड़े हो गये, बोले, " बड़ी बहू ! "

पतिका कंठस्वर सुनकर उसका आत्माभिमान तूफानसे क्षुब्ध समुद्रकी तरह उन्मत्त हो उठा, दौड़कर बाहर आकर बोली, " छि, छि, जो आदमी अपने लुगाई-लड़केको खिला-पिला नहीं सकता, उसको गलेमें फाँसी लगाकर मर जानेके लिए रस्सी तक नहीं जुटती ! "

यादव हतबुद्धि हो गये, बोले, " क्या हुआ जी ! "

" क्या हुआ ? कुछ नहीं। छोटी बहूने आज साफ साफ कह दिया है कि मैं उसकी दासी हूँ और तुम उसके नौकर हो। "

कमरेके भीतर बिन्दोने दाँतों-तले जीभ दबाकर कानोंमें उँगली दे ली।

अन्नपूर्णाने रोते-हुए कहा, " तुम्हारे जीते जी आज मुझे यह बात सुननी पड़ी कि मुझे एक पैसा भी किसीको हाथसे उठाकर देनेका हक नहीं,—आज तुम्हारे सामने खड़ी होकर मैं यह सौगन्द लेती हूँ कि इन लोगोंका अन्न खानेके पहले मुझे अपने बेटेका सिर खाना पड़े ! "

बिन्दोके रुके हुए कानोंमें यह बात अस्पष्ट होकर पहुँच गई; उसने अस्फुट स्वरमें कहा, " यह क्या किया जीजी तुमने ! "

कहकर वहाँकी वहीं गरदन झुकाकर आज बारह वर्ष बाद अकस्मात् मूर्च्छित होकर वह गिर पड़ी।

* * * *

७

नये मकानमें यादव, अन्नपूर्णा और अमूल्यके सिवा और सभी आ गये थे। बाहरसे बिन्दोकी बुआकी लड़की, नाती-नातिनी, मायकेसे उसके मा-बाप, उनके नौकर-चाकर और नौकरानियोंके आ जानेसे घर भर गया था। यहाँ आनेके दिन ही सिर्फ बिन्दो जरा कुछ उदास दिखाई दी थी, पर उसके दूसरे ही दिनसे उसका यह भाव दूर हो गया। इसमें बिन्दोको रंच-मात्र भी सन्देह न था कि गुस्सा उतरते ही अन्नपूर्णा आयेगी। वहाँ पूजा करके लोगोंको खिलाने-पिलानेके उद्योगमें वह व्यस्त हो गई।

बिन्दोके पिताने पूछा, "बिटिया, तेरा लल्ला दिखाई नहीं दे रहा जो?"

बिन्दोने संक्षेपमें कहा, "वह उस घरमें है।"

माने पूछा, "तेरी जिठानी शायद न आ सकी?"

बिन्दोने कहा, "नहीं।"

तब उन्होंने स्वयं ही कहा, "सभी कोई आ जायँ तो उस मकानमें कौन रहेगा? पैतृक मकान बन्द रखनेसे भी नहीं चल सकता।"

बिन्दो चुप रहकर अपने कामसे चली गई।

यादव इन दिनों रोज शामको एक बार आकर बाहर बैठ जाया करते थे और बातचीत करके समाचार लेकर चले जाया करते थे; पर भीतर न घुसते थे। गृह-पूजाके एक दिन पहले, रातको, वे भीतर घुसकर एलोकेशीको बुलाकर समाचार मालूम कर रहे थे। बिन्दोको मालूम पड़ते ही वह ओटमें खड़ी होकर सब सुनने लगी। पितासे भी बढ़कर अपने इस जेठसे बचपनसे उस दिन तक उसे कितना लाड़-प्यार मिला है! कितने स्नेहकी बुलाहटें सुनी हैं! यादव 'बहू रानी' कहके बुलाते थे, उन्होंने किसी दिन 'छोटी बहू' तक नहीं कहा। उसने जिठानीसे कलह करके उसकी इन्हीं जेठजीसे कितनी ही शिकायतें की हैं, और उसकी कोई भी शिकायत किसी दिन उपेक्षित नहीं हुई। आज उनके सामने असीम लज्जासे बिन्दोका गला रुक गया। यादव चले गये। वह एकान्त कमरेमें जाकर मुँहमें आँचल ठूँसकर फूट फूट कर रोने लगी,—चारों तरफ आदमी हैं, कहीं कोई सुन ले!

दूसरे दिन सवेरेके वक्त बिन्दोने अपने पतिको बुलवाकर कहा,—"अबेर हुई जा रही है, पुरोहितजी बैठे हुए हैं,—जेठजी तो अभी तक आये नहीं!"

माधवने विस्मित होकर पूछा, "वे क्यों आवेंगे?"

बिन्दोने उससे भी अधिक विस्मित होकर कहा, "वे क्यों आवेंगे! उनके सिवा यह सब करेगा कौन?"

माधवने कहा, "मैं अथवा जीजाजी प्रिय बाबू करेंगे। भइया न आ सकेंगे।"

बिन्दोने गुस्सा होकर कहा, "'न आ सकेंगे' कहनेसे ही सब काम बन जायगा! उनके रहते हुए क्या और किसीको अधिकार है करनेका! नहीं नहीं, ऐसा नहीं होगा।—उनके सिवा मैं और किसीको कुछ न करने दूँगी।"

माधवने कहा, "तो सब बन्द रहने दो। वे घरपर नहीं हैं, कामपर गये हैं।"

"यह सब बड़ी मालकिनकी कारस्तानी है! तो फिर, मालूम होता है, वे भी नहीं आयेंगीं!" कहकर बिन्दो रोनी-सी सूरत लिये चली गई। उसके लिए पूजा-पाठ, उत्सव–आयोजन, खिलाना-पिलाना सब-कुछ एक ही क्षणमें बिलकुल व्यर्थ हो गया। तीन दिनसे वह एक एक एक क्षण यही सोच रही थी कि आज जेठजी आयेंगे, जीजी आयेंगी, लल्ला भी आयेगा। यह बात उसके सिवा और कोई भी न जानता था कि आजके सारे दिन-भरके काम-काजपर वह मन ही मन अपना सब-कुछ निर्भर करके निश्चिन्त होकर बैठी थी। पतिकी इस एक बातपर उस सबके मरीचिकाकी भाँति बिला जाते ही उत्सवका विराट् व्यर्थ-परिश्रम पत्थरकी तरह उसकी छातीपर भार होकर बैठ गया।

एलोकेशीने आकर कहा, "भंडारकी चाबी जरा देना छोटी बहू, हलवाई सन्देश* लेकर आया है।"

बिन्दोने क्लान्त भावसे कहा, "वहीं वहीं अभी रखवा लो बीबीजी, पीछे देखा जायगा।"

"कहाँ रखवाऊँ बहू, कौए-औए मुँह डालेंगे।"

"तो फिंकवा दो," कहकर बिन्दो अन्यत्र चली गई।

बुआजीने आकर कहा, "क्यों बिन्दो, इस छाक कितना आटा गुँधवाया जाय, एक दफे जरा बता देतीं!"

बिन्दोने मुँह भारी करके कहा, "मैं क्या जानूँ कितना गुँधवाओगी! तुम सब बड़ी बूढ़ी हो, तुम नहीं जानतीं!"

बुआजीने दंग रहकर कहा, "सुन लो इसकी बात!—मैं क्या जानूँ

---

* फटे दूधकी बरफी-नुमा एक मिठाई। बंगालमें सब मिठाइयोंमें यह श्रेष्ठ समझी जाती है।

कितने आदमी इस वखत खायेंगे ?"

बिन्दोने गुस्सेमें कहा, "तो पूछो उनसे जाकर। इस काममें थीं जीजी:— लल्लाके जनेऊमें तीन दिन तक शहरके सब लोगोंने खाया-पीया, सो उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि छोटी बहू, फलाना काम कर या ढिकानी बात देख जाकर।" कहकर वह दूसरे कमरेमें चली गई। कदमने आकर पूछा, "जीजी, जमाईबाबूने कहा है कि पूजाके कपड़े-लत्ते—"

उसकी बात खत्म होनेके पहले ही बिन्दो चिल्ला उठी, "खा डालो मुझे तुम सब मिलकर खा लो मुझे ! जा, दूर हो मेरे सामनेसे।"

कदम घबराकर भाग खड़ी हुई।

कुछ देर बाद माधवने आकर कई बार बुलाकर कहा, "कहाँ गईं, सुनती हो ?"

बिन्दो पास आकर झनककर बोली, "नहीं होता मुझसे। मैं नहीं कह सकूँगी ! नहीं कर सकूँगी ! हुआ अब ?"

माधव दंग रहकर उसके मुँहकी तरफ देखने लगे।

बिन्दोने कहा, "क्या करोगे मेरा ? फाँसी दोगे ? न हो तो वही करो—" कहकर रोती हुई जल्दीसे वहाँसे चली गई। इधर दिन चढ़ने लगा।

बिन्दो विना कामके छटपटाती हुई इधरसे उधर कमरे-कमरेमें जाकर लोगोंकी गलतियाँ पकड़ती फिरने लगी। किसीने जल्दीमें रास्तेपर कुछ बरतन रख दिये थे, बिन्दोने उन्हें घसीटके आँगनमें फेंक दिया और किस तरह काम किया जाता है सो सिखा दिया। किसीकी भीगी धोती सूख रही थी जो उड़कर उससे छू गई; बस, बिन्दोने उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले, और इस तरह समझा दिया कि धोती कैसे सुखाई जाती है। जो कोई उसके सामने पड़ता वही मारे डरके सामनेसे हटकर एक किनारे खड़ा हो जाता।

पुरोहित बेचारेने खुद भीतर आकर कहा, "बड़ी मुश्किल है,—अबेर होती जा रही है,—कोई इन्तजाम ही होता दिखाई नहीं देता—"

बिन्दोने ओटमें खड़े रहकर कड़ा जवाब दिया, "काम-काजके घरमें अबेर थोड़ी-बहुत होती ही है।" कहकर एक बरतनको पैरसे दूर ठुकराकर दूसरे कमरेमें जाकर वह निर्जीवकी भाँति जमीनपर पड़ रही। दसेक मिनट बाद सहसा उसके कानोंमें एक परिचित कंठका शब्द सुनाई दिया। वह भड़भड़ाकर खड़ी हो गई और दरवाजेसे मुँह बढ़ाकर देखा, कि अन्नपूर्णा आकर आँगनमें खड़ी है।

बिन्दो मारे दुःख और अभिमानके रोती आँखें पोंछ, गलेमें आँचल डाल और हाथ जोड़कर अपनी जिठानीसे बोली, "दस-ग्यारह बज रहे हैं, अब और कितनी दुश्मनी निभाओगी जीजी ? मेरे जहर खा लेनेपर तुम्हारी मनसा पूरी हो जाय, तो वही करो, घर जाकर एक कटोरी भरके भेज दो।" कहकर उसने चाबीका गुच्छा झन्न-से जिठानीके पैरोंके पास फेंक दिया और खुद अपने कमरेमें चली गई और भीतरसे किवाड़ देकर जमीनपर औंधी पड़के रोने लगी।

अन्नपूर्णाने चुपचाप चाबीका गुच्छा उठाया, किवाड़ खोले और भंडार-घरमें प्रवेश किया।

तीसरे पहर लोग-बागोंके आने-जाने और खिलाने-पिलानेकी भीड़ घट गई थी, फिर भी बिन्दो न जाने किस बातके लिए अस्थिर होकर कभी भीतर और कभी बाहर जाने-आने लगी।

भैरोंने आकर कहा, "लल्ला-बाबू स्कूलमें नहीं हैं।"

बिन्दोने उसपर आँखोंसे आग बरसाते हुए कहा, "अभागी कहींका! लड़के रात तक स्कूलमें रहते होंगे ? नया आदमी है तू ? एक बार उस घरमें जाकर नहीं देख आया ?"

भैरोंने कहा, "उस घरमें भी नहीं हैं।"

बिन्दोने चिल्लाकर कहा, "न जाने कहाँ किन नीचोंके साथ गुल्ली-डंडा खेल रहा होगा! अब क्या उसके मनमें डर है किसी बातका! अबकी बार जब एक आँख फूट जायगी, तब जाकर बड़ी मालकिनका कलेजा ठंढा होगा! तू जा, जहाँ मिले, उसे ढूंढ़के ला।"

अन्नपूर्णा भंडार-घरकी चौखटपर बैठीं ओर और दस-पाँच बड़ी-बूढ़ियोंके साथ बातचीत कर रही थीं। छोटी बहूका तीक्ष्ण स्वर उन्होंने सुन लिया।

घंटे-भर बाद भैरोंने आकर कहा, "लल्ला बाबू घरमें हैं, पर आते नहीं।"

बिन्दो इस बातपर विश्वास न कर सकी।

"आता नहीं क्या रे ? मैं बुला रही हूँ, कहा था तैंने ?"

भैरोंने क्षण-भर चुप रहकर फिर कहा, "उसका क्या अपराध ? जैसी माँ है, वैसा ही तो लड़का होगा! मेरी भी कड़ीसे कड़ी कसम रही, ऐसे माँ-बेटेका मुँह न देखूँगी।"

बहुत रात बीते अन्नपूर्णा जब अपने घर जानेके लिए तैयार हुईं, तो

माधव खुद उन्हें पहुँचानेके लिए उपस्थित हुए। बिन्दोने जल्दीसे पास आकर अपने पतिको लक्ष्य करके भीषण कंठसे कहा, "पहुँचाने तो चल दिये, जानते हो उन्होंने पानी तक नहीं छुआ!"

माधवने कहा, "सो तुम्हारे जाननेकी बात है,—मेरी नहीं। सब काम बिगड़ता हुआ दिखाई दिया, तो खुद जाकर लिवा लाया था, अब खुद ही पहुँचाने जा रहा हूँ।"

बिन्दोने कहा, "अच्छा अच्छा, अच्छी बात है। देखती हूँ कि तुम भी उसी तरफ हो।"

माधवने इसका कुछ जवाब न देकर अपनी भौजाईसे कहा, "चलो भाभी, अब देर मत करो।"

"चलो लालाजी" कहकर अन्नपूर्णाने कदम बढ़ाया ही था कि बिन्दोने गरजकर कहा, "लोग कहनावतमें कहते हैं न, घरका दुश्मन! मुँहमें जो कुछ बात आई सो दस-पाँच झूठी-सच्ची मिलाकर कह दी,—दाँती पीसकर कसमें खाईं, चार दिन चार रात लड़केका मुँह तक न देखने दिया,—भगवान ही इसका न्याय करेंगे!"

कहती हुई बिन्दो अपने मुँहमें आँचल ठूँसकर किसी तरह रोनेको रोकती हुई रसोई-घरमें जाकर औंधी पड़ रही और साथ ही बेहोश हो गई। शोर-गुल मच गया। माधव और अन्नपूर्णा दोनोंने सुना। अन्नपूर्णा मुड़कर खड़ी हो बोली, "क्या हुआ, देखूँ।"

माधवने कहा, "देखनेकी जरूरत नहीं, चलो।"

कलहकी बात इधर कई दिनसे गुप्त थी, पर अब न रही। दूसरे दिन घरकी औरतें जब एक जगह बैठीं, तब एलोकेशी बोल उठी, "देवरानी जिठानीमें झगड़ा हुआ है, पर लड़केको क्या हो गया जो वह एक बार आ भी नहीं सका!—छोटी बहूने कुछ झूठ नहीं कहा, जैसी माँ हैं, वैसा ही तो लड़का होगा। बहुत बहुत लड़के देखे हैं बहिन, पर ऐसा नमकहराम कहीं नहीं देखा।"

बिन्दोने क्लान्त दृष्टिसे एक बार उसकी तरफ देखकर मारे शरम और घृणाके आँखें नीची कर लीं। एलोकेशीने फिर कहा, "तुम्हें लड़का चाहिए छोटी बहू, मेरे नरेंद्रनाथको ले लो,—उसे तुम्हें दिये देती हूँ। मार डालो,—किसी दिन एक बात भी कहनेवाला लड़का नहीं वह,—वैसी औलाद मैंने कूँखमें नहीं रक्खी।"

बिन्दो चुपचाप निःशब्द बैठी रही। बिन्दोकी माँकी उमर हो चुकी है,

जमींदारके घरकी लड़की हैं और जमींदारके ही घरकी गृहिणी, अनुभवमें पक्की ठहरीं। सिर्फ उन्होंने जवाब दिया। हँसकर बोलीं, "यह कैसी बात कह रही हो जी! अमूल्य उसके हाड़-मांसमें बसा हुआ है;—नहीं नहीं, उसे तुम लोग व्याकुल मत करो।—बिन्दो, तुम्हारा झगड़ा तो दो दिनसे ही है बेटी, इससे क्या लड़का पराया हो जायगा?"

बिन्दो छकलती हुई आँखोंसे माँके चेहरेकी तरफ देखकर चुपचाप बैठी रही।

शामके वक्त उसने कदमको बुलाकर कहा, "अच्छा कदम, तू तो मौजूद थी, बता, मेरा इतना क्या कसूर था जो वे इतनी कड़ी कसम खा बैठीं?"

सहसा कदम इस बातपर विश्वास ही न कर सकी कि बिन्दोने उसे इस विषयकी आलोचना करनेके लिए बुलाया है, वह अत्यन्त संकुचित होकर मौनसे बैठी रही। फिर भी बिन्दोने कहा नहीं नहीं, हजार हो, तुम उमरमें बड़ी हो, तुम लोगोंकी दो बातें मुझे सुननी ही चाहिए। तू ही बता न, मुझसे कोई दोष हुआ था?"

कदमने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं जीजी, दोषकी कौन सी बात है!"

बिन्दोने कहा, "तो जा न जरा उस घरमें, दो चार बातें अच्छी तरह सुना आ न जाकर,—तुझे डर किस बातका है?"

कदम हिम्मत पाकर बोली, "डर कुछ नहीं जीजी, पर जरूरत क्या है अब झगड़ा-टंटा बढ़ानेकी? जो होना था सो हो गया।"

बिन्दोने कहा, "नहीं नहीं कदम, तू समझती नहीं,—सच बात कह देना अच्छा है। नहीं तो वे समझेंगे कि सब दोष मेरा ही है, उनका कुछ भी नहीं। निकाल दूँगी, दूर कर दूँगी,—ये सब बातें नहीं कहीं उन्होंने? पर मैं किसी दिन इसपर गुस्सा हुई हूँ? क्यों उन्होंने छिपाके रुपये दिये? क्यों मुझे जताया नहीं?"

कदमने कहा, "अच्छा, कल जाऊँगी, आज शाम हो गई है।"

बिन्दो नाखुश होकर बोली, "शाम कहाँ हो गई कदम,—तू बात बहुत काटा करती है। जाड़ेके दिन हैं, इसीसे ऐसा दिखाई देता है न हो तो किसी को साथ ले जा न,—अरे, ओ भैरों, सुन, जरा हबुआको बुला दे तो, कदमके साथ चला जाय।"

भैरोंने कहा, "हबुआसे बाबूजी बत्ती साफ करा रहे हैं।"

बिन्दोने आँख उठाकर कहा, "फिर तैंने मुँहके सामने जवाब दिया!"

भैरों उस चितवनके सामनेसे भाग खड़ा हुआ। कदमको भेजकर बिन्दो

दो-एक वार इस कमरेसे उस कमरेमें जाकर रसोईघरमें जा पहुँची । मिसरानी अकेली बैठी राँध रही थी । बिन्दोने एक किनारे बैठकर कहा, "अच्छा मिसरानीजी, तुम्हींको गवाह मानती हूँ, सच बात बताना, किसका सूकर ज्यदादा है ?"

मिसरानी समझ न सकी, बोली, "कैसा कसूर बहूजी ?"

बिन्दोने कहा, "उस दिनकी बात जी ! क्या कहा था मैंने ? सिर्फ इतना ही तो पूछा था कि जीजी, लल्लाको इस बीचमें रुपये दिये हैं ? कौन नहीं जानता कि लड़कोंके हाथमें रुपये-पैसे नहीं देना चाहिए ? यह कह देनेसे ही तो चुक जाता कि रोआ-राई कर रहा था, सो दे दिये । बस, झगड़ा मिट जाता । इस बातपर इतनी बातें उठें ही क्यों, और ऐसी कसम खाई जाय ही क्यों ? जहाँ दस बरतन होते हैं वहाँ खटपट तो हुआ ही करती है,—फिर हम तो आदमी ठहरे ! इसपर इतनी बड़ी कसम खाई जाती है ? घरमें एक ही लड़का है,—उसके नामपर कसम ! मैं कहती हूँ मिसरानी तुमसे, इस जनममें मैं उनका मुँह न देखूँगी । दुश्मनकी तरफ निगाह उठाकर देख लूँगी, पर उनकी तरफ नहीं ।"

मिसरानी स्वभावतः अल्पभाषिणी थी; वह क्या कहे, कुछ समझमें न आया, इससे चुप हो रही। बिन्दोकी दोनों आँखें आँसुओंसे डबडबा आईं । झटसे आँखें पोंछकर रुँने हुए गलेसे उसने फिर कहा, "गुस्सेमें कौन नहीं कसम खा बैठता मिसरानी ? इससे क्या पानी तक न छूना चाहिए ? लड़के तकको न आने दिया ! ये सब क्या बड़ोंके-से काम हैं ? हजार हो, मैं छोटी हूँ, समझ कम है,—अगर उनके ही पेटकी लड़की होती तो फिर क्या करतीं ? मैं भी अब उनका नाम मुँहपर न लाऊँगी, सो तुम सब देख लेना ।"

मिसरानी फिर भी चुप रही। बिन्दो कहने लगी, "और वे ही कसम खाना जानती हैं, मैं नहीं जानती ? कल अगर उस घरमें जाकर कह आऊँ, कटोरा भर जहर न भिजवा दो तो तुम्हारी वही कसम रही,—तब क्या हो ? मैं दो-चार दिन चुप मारे बैठी हुई हूँ, इसके बाद या तो जाकर वही कसम दे आऊँगी, नहीं तो खुद ही जहरका प्याला पीकर कह जाऊँगी, जीजीने भेज दिया था। देखूँ, फिर पाँच जने उनके नामपर थूकते हैं या नहीं, उनकी अकल ठिकाने आती है या नहीं !"

मिसरानी डर गई, मृदु-स्वरमें बोली, "छिः बहूजी, ऐसी बातें न सोचनी चाहिए । लड़ाई-तकरार हमेशा नहीं रहती,—वे भी तुम्हें छोड़कर नहीं रह

सकतीं और न लल्ला ही तुम्हारे बगैर रह सकता है। हम लोग सिर्फ यही सोच रही हैं कि इन कई दिनोंसे वह वहाँ कैसे रह रहा है?"

बिन्दो व्यग्र होकर कह उठी, "सो ही कहती हूँ मिसरानी। जरूर उसे उन्होंने मार-पीटकर डरा-धमकाकर रक्खा है। जो सिर्फ एक रात भी मेरे बिना सो नहीं सकता, उसे आज पाँच दिन और चार रातें बीत गईं! उस औरतका क्या अब मुँह देखना चाहिए! मैंने कह न दिया, दुश्मनकी तरफ मुँह उठाकर देख लूँगी पर उनकी तरफ इस जनममें तो अब नहीं।"

मिसरानीजीने अपनी कलाईके पास एक काला-सा दाग दिखाते हुए कहा, "यह देखो बहू, अभी तक दाग बना हुआ है। उस दिन रातको जब तुम बेहोश हो गई थीं, तबकी बात तुम्हें मालूम नहीं। लल्ला न जाने कहाँसे आकर तुम्हारी छातीपर पड़ गया,—उसका रोना अगर तुम देखतीं तो न जाने क्या कहतीं! उसने तो कभी देखा नहीं कि मरना क्या होता है, कहने लगा, 'छोटी माँ मर गई।' न तो मुझे पानीके छींटे डालने दे, न बयार करने दे,—मैंने खींचके उठाना चाहा, तो मुझे काट खाया उसने। बड़ी बहूने पकड़के उठाना चाहा, उन्हें भी काट-कूटकर नोच-खसोटकर उनका धोतीका पल्ला फाड़-फूड़ डाला। लोग बीमारकी सेवा क्या करें बहू, उसीको लेकर मुश्किलमें पड़ गये। अन्तमें चार-पाँच जने मिलकर उसे उठा ले गये।"

बिन्दो अपलक दृष्टिसे मिसरानीके मुँहकी तरफ देखती हुई मानो उसकी बातें लीलने लगी। उसके बाद एक बहुत लम्बी साँस लेकर धीरे धीरे वह अपने कमरेमें जाकर किवाड़ देकर पड़ रही।

चारेक दिन बाद,—बिन्दोके पिता, माता, बुआ आदिके वापस जानेके एक दिन पहले, मूर्छा ठीक हो जानेपर बिन्दो अपने बिस्तरपर पड़ी थी। कदम बयार कर रही थी, और कोई था नहीं। बिन्दोने इशारेसे उसे और भी पास बुलाकर मृदु-स्वरमें कहा, "कदम, जीजी आई हैं क्या री?"

कदमने कहा, "नहीं जीजी, हम लोग इतनी जनी हैं, फिर उन्हें तकलीफ देनेकी क्या जरूरत?"

बिन्दोने कुछ देर तक स्थिर रहकर कहा, "यही तो तुम लोगोंमें दोष है, कदम। सब कामोंमें तुम लोग अपनी बुद्धि लगाना चाहती हो। मालूम होता है, इसी तरह किसी दिन तुम सब मुझे मार डालोगी। पूजाके दिन भी तो तुम सब घर-भरकी लुगाई मौजूद थीं। जब तक कि उस जरा-सी एक

जनीने घरमें पैर न दिया तब क्या कर सकी थीं तुम लोग अरे कहाँ तुम-लोग और कहाँ वे ! उनकी कानी उँगलीके बराबर भी ताकत नहीं है घर-भरकी तुम सबोंमें । "

बिन्दोकी माने कमरेमें घुसकर कहा, " जमाईकी तो राय है बिन्दो, तू भी कुछ दिनोंके लिए हमारे साथ घूम आ, चली चल । "

बिन्दोने माके चेहरेकी तरफ देखकर कहा, " मेरा जाना न जाना क्या उन्हींकी रायपर निर्भर करता है मा, जो उनके कह देनेसे ही चली जाऊँ ! मैं अपने दुश्मनका हुकम पाये विना कैसे जाऊँ ? "

मा इस बातको समझकर बोली, " अपनी जिठानीकी बात कर रही है तू ? उसके हुकमकी अब जरूरत नहीं । जब अलग होकर तुम लोग चले आये हो, तब इन्हींका कहना काफी है । "

बिन्दोने सिर हिलाकर कहा, " नहीं नहीं, सो नहीं होगा । जबतक जिन्दी हैं तबतक चाहे जहाँ रहें, सब-कुछ वे ही हैं । और चाहे जो भी करूँ माँ उनसे विना पूछे घर छोड़के नहीं जा सकती, नहीं तो जेठजी गुस्सा होंगे । "

इसी समय एलोकेशीने आकर यह सुना, तो कहा, " अच्छा मैं कहती हूँ, तुम जाओ । "

बिन्दोने उसकी बातका जवाब भी न दिया । माने कहा, " अच्छी बात है, तो आदमी भेजकर उनसे पुछवा ही ले तू ! "

बिन्दोने विस्मित होकर कहा, " आदमी भेजकर ? यह तो और भी बुरा होगा माँ ! मैं उनका मन जानती हूँ, मुँहसे कह देंगी, ' चली जा,' पर भीतर ही भीतर गुस्सा रहेंगी । और शायद जेठजीसे चार-छह झूठी-सच्ची मिलाकर कह देंगी,—नहीं मा, तुम लोग जाओ, मेरा जाना नहीं होगा । "

माँने ! आगे जिद नहीं की, चली गई ।

अब तो सूने मकानका एक एक क्षण उसे लील जानेके लिए मुँह फाड़ने लगा । नीचेके एक कमरेमें एलोकेशी रहती है, और ऊपरका एक कमरा उसका अपना है; बाकी सारे कमरे खाँव खाँव करने लगे । वह सूने मनसे घूमती-फिरती तिमँजलेके एक कमरेमें जाकर खड़ी हो गई । किसी सुदूर भविष्यकी पुत्र-वधूके लिए उसने यह कमरा बनवाया था । इसमें आते ही वह किसी भी तरह अपने उमड़ते हुए आँसुओंको न रोक सकी । नीचे उतर रही थी कि बीचमें पतिसे भेंट होते ही वह कह उठी, " क्यों जी, अब क्या होगा ! "

माधव समझ न सके, बोले, " किस बातका "

बिन्दुसे अब जवाब न दिया गया। सहसा एक गहरी उसास भरकर बोली, " नहीं नहीं, तुम जाओ, कोई बात नहीं है। "

दूसरे दिन सबेरे माधव बाहरवाले कमरेमें बैठे काम कर रहे थे, अचानक बिन्दोने घरमें घुसते ही अपनी रुलाई दबाते हुए पूछा, " जेठजी नौकरी करने लगे हैं ? "

माधवने आँखें बगैर उठाये ही कहा, " हाँ। "

" हाँ क्या ? यह क्या उनकी नौकरी करनेकी उमर है ? "

माधवने पहलेकी तरह कागजातपर निगाह रखते हुए कहा, " नौकरी क्या आदमी उमरके लिए करता है ? नौकरी करता है अभावके कारण ! "

" उन्हें कमी किस बात की है ? हम उनके बिराने हैं, लड़ाई-झगड़ा हम दोनोंमें हुआ है, मगर तुम तो उनके भाई हो ! "

माधवने कहा, " सौतेले भाई हैं,—कुटुम्बी।

बिन्दो दंग रह गई, धीरेसे बोली, " तुम अपने जीते-जी उन्हें नौकरी करने दोगे ? "

माधवने एक बार मुँह उठाकर अपनी स्त्रीकी तरफ देखा, उसके बाद स्वाभाविक शान्त स्वरमें कहा, क्यों नहीं करने दूँगा ? संसारमें सब अपनी अपनी तकदीर लेकर आते हैं और उसीके माफिक भोगते हैं,—इसका जीवित दृष्टान्त मैं खुद हूँ। कब मा-बाप मरे, मैं नहीं जानता। भाभीके मुँहसे सुना है, हम लोग बड़े गरीब थे, मगर किसी दिन दुःख-कष्टकी भाफ तक मुझे नहीं लगी। कहाँसे हमेशा उजले साफ कपड़े मिलते रहे, कहाँसे स्कूल कालेजका खर्च, किताबोंके दाम, मेसका खर्च वगैरह चलता रहा, सो मैं अब भी नहीं जानता। उसके बाद वकील होनेपर भी कम रुपये नहीं पाये। इतनेमें न जाने कैसे कहाँसे तुम अपने साथ ढेरके ढेर रुपये ले आई,—बढ़िया मकान भी बन गया,—मगर भइयाको देखो, हमेशा चुपचाप हड्डी-तोड़ मेहनत करते रहे हैं, फटे-पुराने पैबन्द लगे कपड़े पहनते रहे हैं,—जाड़ोंके दिनोंमें भी कभी उनके शरीरपर गरम कपड़ा नहीं देखा,—एक छाक मुट्ठी-भर खाकर सिर्फ हम लोगोंके लिए,—सब बातें मुझे याद भी नहीं पड़तीं, और पड़नेकी जरूरत भी नहीं देखता,—सिर्फ कुछ दिन जरा आराम कर पाये थे कि भगवान् मय व्याजके वसूल किये ले रहे हैं। "

इतना कहकर सहसा वे मुँह फेरकर कोई जरूरी कागज ढूँढ़नेमें लग गये।

बिन्दो सन्न हो रही। पतिकी ओरसे उसका कितना बड़ा तिरस्कार इन अतीत दिनोंकी सहज कहानीमें छिपा हुआ था, बिन्दो अपने एक एक रक्त-बिन्दुमें इस बातका अनुभव करने लगी। वह सिर झुकाये खड़ी रही।

माधव कागज़ ढूँढ़ते हुए मानो अपने आप ही कहते रहे, " नौकरी भी कैसी! राधापुरकी कचहरी तक जाने-आनेमें करीब पाँच कोसका चक्कर,—तड़के ही चार बजेसे निकलकर दिन-भर विना खाये-पीये! काम करना और रातको घर आकर दो गस्सा खाना,—तनखा बारह रुपये।"

बिन्दो सिहर उठी, " दिन-भर विना खाये-पीये! कुछ जमा बारह रुपये तनखा!"

" हाँ, बारह रुपये। उमर हो चुकी, उसपर अफीमवाले आदमी, थोड़ा-सा दूध भी नहीं मिलता। देखता हूँ, भगवान् इतने दिनों बाद अब दया करके भइयाकी भव-वेदना मेंट देनेका उपाय किये दे रहे हैं।"

बिन्दोकी आँखोंसे आँसू ढल पड़े; और तब जो उसने कभी नहीं किया, वह भी कर डाला। झुककर उसने पतिके पैर पकड़ लिए और रोते हुए कहा, " तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, कोई उपाय कर दो, कमज़ोर आदमी हैं,—इस तरह तो दो दिन भी न जी सकेंगे।"

माधवने किसी तरह अपनी आँखोंके आँसू पोंछकर कहा, " मैं क्या उपाय करूँ?—भाभी हम लोगोंका एक कण भी अन्न नहीं लेना चाहतीं;—फिर विना कुछ किये उनकी गृहस्थी भी कैसे चलेगी?"

बिन्दोने रुँधे हुए कण्ठसे कहा, " सो मैं नहीं जानती। ओ जी, तुम मेरे देवता हो और वे तुमसे भी बड़े हैं! छि छि, जो बात मनमें लाई भी नहीं जा सकती, सो बात—" बिन्दोसे आगे न बोला गया।

माधवने कहा, " अच्छी बात है, कमसे कम भाभीके पास तो जाओ। जिससे उनका गुस्सा उतरे, वे प्रसन्न हों, सो ही करो। मेरे पैर पकड़े दिन-भर बैठे रहनेसे भी कुछ न होगा।"

बिन्दो उसी वक्त पाँव छोड़कर उठ बैठी, बोली, " पैरों पड़नेकी आदत मेरी नहीं है। अब समझी, क्यों उस दिन रातको उन्होंने पानी तक नहीं छुआ और तुम समझ-बूझकर दुश्मनकी तरह चुप रहे? मेरा कसूर बढ़ गया, तुमने बात तक नहीं की?"

माधवने अपने कागज़ोंमें मन लगाते हुए कहा, " नहीं। वह विद्या मैंने

अपने भइयासे सीखी है। भगवान् करें, ऐसे ही चुप रहकर एक दिन यहाँसे कूच कर दूँ!"

बिन्दोने आगे बात नहीं की। वह उठी और अपने कमरेमें जाकर किवाड़ देके पड़ रही।

माधव उठनेकी तैयारी कर रहे थे कि इतनेमें बिन्दो फिर वहाँ आ गई। उसकी दोनों आँखें लाल सुर्ख हो रहीं थीं। माधवको दया आ गई, बोले, "जाओ एक बार उनके पास। जानती तो हो उन्हें, एक बार जाकर खड़ी हो जाओ उनके सामने, बस, सब ठीक हो जायगा।"

बिन्दोने अत्यन्त करुण कण्ठसे कहा, "तुम जाओ,—ओ जी, मैं लल्लाकी कसम खाती हूँ—"

माधवने उसके मनका भाव ताड़के कुछ गरम होकर जवाब दिया, "हजार कसम खानेपर भी मैं भइयासे जाकर नहीं कह सकता। इतनी हिम्मत मेरी गरदन उड़ा देनेपर भी न होगी कि वे जबतक नहीं पूछें तबतक मैं खुद जाकर उनसे कुछ कहूँ।"

बिन्दो फिर भी वहाँसे न हटी।

माधवने कहा, "नहीं जा सकतीं?"

बिन्दोने जवाब दिया, "नहीं।" और वह धीरे धीरे वहाँसे चली गई।

* * * *

८

मकानके सामनेसे स्कूल जानेका रास्ता है। पहले-पहल कई दिनों तक लल्ला छतरीकी ओट करके इसी रास्तेसे गया था। आज दो दिनसे वह लाल रंगकी छतरी अब उस रास्तेके एक किनारेसे नहीं निकलती। राह देखते देखते बिन्दोकी आँखें फटी जाने लगीं, फिर भी वह अटारीकी छतपर ओटमें बैठी हुई उसी तरह टकटकी लगाये सड़ककी तरफ देख रही है! सवेरे नौ-दस बजेके भीतर कितने ही तरहकी छतरियाँ सिरपर ताने कितने ही लड़के उस रास्तेसे निकल गये, और स्कूलकी छुट्टीके बाद भी कितने ही लड़के उसी रास्तेसे फिर लौट गये; मगर वह चाल, वह छतरी, बिन्दोको न दिखाई दी। वह शामके वक्त आँखें पोंछती हुई नीचे उतर आई और नरेन्द्रको एक तरफ बुलाकर पूछने लगी, "क्यों रे नरेन, यही तो स्कूल जानेका सीधा रास्ता है, फिर वह अब इधरसे क्यों नहीं जाता?"

नरेन्द्र चुप रह गया।

बिन्दोने कहा, " अच्छा तो है तुम दोनों भाई गप-शप करते हुए एक साथ जाओ-आओ,—यही तो अच्छा है। "

नरेन्द्र अपने निजी ढंगसे अमूल्यको प्यार करता था, वह चुपके-से बोला, " वह मारे शरमके इधरसे नहीं जाता, माँई,—अब वह देखो, वहाँसे घूमकर निकल जाता है। "

बिन्दोने मुश्किलसे हँसकर कहा, " उसे शरम किस बातकी है रे? नहीं नहीं, तू कह देना उससे, इधरहीसे जाया करे। "

नरेन्द्रने सिर हिलाकर कहा, " वह कभी न जायगा माँई! क्यों नहीं जायगा, जानती हो? "

बिन्दोने उत्सुक होकर पूछा, " क्यों? "

नरेन्द्रने कहा, " तुम गुस्सा तो न होगी? "

" नहीं। "

" उसके घरपर किसीसे कहला तो न भेजोगी? "

" नहीं। "

" मेरी अम्मासे भी न कहोगी? "

बिन्दोने अधीर होकर कहा, " नहीं रे नहीं, बता तू,—मैं किसीसे कुछ न कहूँगी। "

नरेन्द्रने फुसफुस करके कहा, " थर्ड मास्टरने उसके अच्छी तरह कान मल दिये थे। "

एक क्षणमें बिन्दो आगकी तरह भक-से जल उठी, बोली, " क्यों मले? देहपर हाथ लगानेकी मैंने मनाही कर दी थी न? "

नरेन्द्रने हाथ हिलाकर कहा, " उसका क्या दोष है माँई, वह नया आदमी ठहरा। हम लोगोंका नौकर यह हबुआ साला ही बदमाश है, उसीने आकर माँसे कह दिया और मेरी माँ भी कम नहीं है, उसने मास्टरसे कह देनेके लिए कह दिया। थर्ड मास्टरने बस चटसे अच्छी तरह धरके कान मल दिये,—कैसे, जानती हो माँई, देखो, ऐसे पकड़के—"

बिन्दोने चटसे उसे रोककर कहा, " हबुआने क्या कह दिया? "

नरेन्द्रने कहा, " क्या मालूम माँई, हबुआ टिफिनके वक्त मेरा जल-पान ले जाता है, तो वह दौड़के आकर पूछा करता है, 'क्या जलपान है देखूँ नरेन—भइया?' माँने सुनके कहा, 'अमूल्य नजर लगा देता है।' "

" लल्लाके लिए कोई जल-पान नहीं ले जाता? "

नरेन्द्रने माथा ठोककर कहा, " कहाँ पायेगा माँई, वे लोग गरीब आदमी हैं, जेबमें थोड़से भुँजे हुए चने ले आता है, टिफिनके वक्त उन्हें ही पेड़के नीचे बैठ छिपाकर खा लिया करता है। "

बिन्दोकी आँखोंके सामने घर द्वार और सारी दुनिया घूमने लगी। वह वहाँकी वहीं बैठी रही।

बोली, " नरेन, तू जा ! "

उस दिन रातको बहुत देरतक बुलाने-पुकारनेके बाद बिन्दो खाने बैठी, तो उससे किसी भी तरह मुँहमें कौर न दिया गया। अन्तमें 'तबीयत खराब है' कहकर उठ गई। दूसरे दिन भी लगभग उपासी ही पड़ी रही; पर किसीसे भी कुछ न कह सकी,—कोई उपाय भी उसे ढूँढ़े न मिला। उसे बार बार यही डर लगने लगा, कि कहीं बात कहनेमें उसका अपना कसूर और भी न बढ़ जाय। तीसरे पहर पतिके भोजनके समय अभ्यासके अनुसार वह उनके पास बैठी, पर दूसरी तरफ देखती रही,—किसी भी तरह खाने-पीनेकी चीज़ोंकी और आँख उठाकर देख न सकी।

घरमें बत्ती जल रही है। माधव निमीलित-नेत्रोंसे चुपचाप पड़े पढ़ रहे थे। बिन्दो पैरोंके पास आकर बैठ गई। माधवने आँख उठाकर देखा, कहा, " क्या है ? "

बिन्दो सर झुकाये पतिके पाँवकी एक उँगलीका नाखून खोंटने लगी।

माधवने स्त्रीके मनकी बातका अनुमान करके भीतरसे पसीजकर कहा, " मैं सब कुछ समझता हूँ बिन्दु, मगर मेरे पास रोनेसे क्या होगा ? उनके पास जाओ। "

बिन्दो सचमुच ही रो रही थी; बोली, " तुम जाओ। "

" मैं जाकर तुम्हारी बात कहूँगी, भइया सुनेंगे नहीं ? "

" मैं तो कहती हूँ मेरा कसूर हुआ है, मैं कान पकड़ती हूँ, तुम उनसे जाकर कहो। "

" मुझसे न होगा " कहकर माधव करवट लेकर सो रहे।

बिन्दो और भी कितनी ही देर तक आस लगाये बैठी रही; मगर माधवने जब और कोई बात नहीं कही, तब वह धीरे धीरे उठकर चली गई। पतिके व्यवहारसे उसकी छातीके भीतर एक किनारेसे दूसरे किनारे तक एक पत्थर-सा कठोर धिक्कार योजन-व्यापी पर्वतकी तरह निमेष-मात्रमें परिव्याप्त हो गया। आज वह निस्सन्देह रूपसे समझ गई कि उसको सभीने त्याग दिया है।

दूसरे दिन सवेरे ही यादवने छोटी बहूके जानेकी अनुमति देते हुए एक चिट्ठी

लिखकर भेज दी। बिन्दोका पिता बीमार हैं, वह जल्दी रवाना हो जाय। बिन्दो आँसू-भरे नेत्रोंसे गाड़ीपर सवार हुई। मिसरानीने गाड़ीके पास जाकर कहा, "पिताजीको अच्छा देखकर जल्दी ही आ जाना बहूजी।"

बिन्दोने गाड़ीसे उतरकर उसके पाँव छूए, तो मिसरानी अत्यंत संकुचित हो उठी। बिन्दोको ऐसी नत, इतनी नम्र होते किसीने किसी दिन न देखा था। पाँव छूकर माथेसे हाथ लगाते हुए उसने कहा, "नहीं मिसरानीजी, कुछ भी हो, तुम ब्राह्मणकी लड़की हो, उमरमें बड़ी हो,—असीस दो कि मैं अब लौट न सकूँ, यही जाना मेरा आखिरी जाना हो।"

ब्राह्मणकी लड़की इसके उत्तरमें कुछ भी कह न सकी,—बिन्दोके शीर्ण और क्लिष्ट चेहरेकी तरफ देखकर रो दी।

एलोकेशी मौजूद थी, वह खनकती हुई बोली, "यह क्या बात है छोटी बहू ! और किसीके माँ-बाप क्या बीमार नहीं पड़ते ?"

बिन्दोने कुछ जवाब नहीं दिया, मुँह फेरकर आँखें पोंछ लीं। कुछ देर बाद कहा, "तुम्हें नमस्कार करती हूँ बीबीजी,—चल दी मैं।"

बीबीजीने कहा, "जाओ बहन, जाओ। मैं घरमें मौजूद हूँ, सब देख भाल लूँगी।"

बिन्दोने फिर कोई बात नहीं कही। कोचवानने गाड़ी हाँक दी।

अन्नपूर्णा मिसरानीके मुँहसे ये सब बातें सुनकर चुप हो रही।

इससे पहले बिन्दो कभी लल्लाको छोड़कर मायके नहीं गई थी। आज महीने-भरसे ज्यादा हो गया, वह उसे एक बार भी आँखोंसे नहीं देख पाई है। उसके दुःखको अन्नपूर्णाने समझा।

रातको लल्ला बापके पास पड़ा धीरे धीरे कुछ कह रहा था।

नीचे दीआके उजालेमें कथड़ी सींते सींते अन्नपूर्णा सहसा एक गहरी साँस लेकर बोल उठी, "राम ! राम ! जाते वक्त यह क्या कह गई कि यही जाना आखिरी जाना हो ! मा दुर्गा करें कि बहू मेरी अच्छी तरह लौट आवे।"

बात सुनकर यादव उठकर बैठ गये, बोले, "तुमने शुरूसे आखिरतक अच्छा काम नहीं किया बड़ी बहू ! मेरी बहू रानीको तुममेंसे किसीने भी नहीं पहिचाना।"

अन्नपूर्णाने कहा, "वह भी तो एक बार 'जीजी' कहके पास नहीं आई। अपने लड़केको तो वह जबरदस्ती ले जा सकती थी, सो भी नहीं किया ! उस दिन दिन-भर उतनी मेहनत करके घर आ रही थी,—उलटे और न

जाने कितनी कड़ी कड़ी बातें सुना दीं !"

यादवने कहा, "अपनी बहू रानीकी बात सिर्फ मैं ही समझता हूँ। मगर बड़ी बहू, इतना भी अगर माफ नहीं कर सकतीं, तो बड़ी हुई थीं क्यों ? तुम भी जैसी हो, माधव भी वैसा ही है। मालूम पड़ता है, तुम लोगोंने बाँध-बूँधकर मेरी बहू रानीके प्राण ले लिये।"

अन्नपूर्णाकी आँखोंसे टपटप आँसू गिरने लगे।

लल्लाने कहा, "बाबूजी, छोटी माँने क्यों नहीं आनेको कहा है ?"

अन्नपूर्णाने आँखें पोंछते हुए कहा, "जायगा तू अपनी छोटी माँके पास ?"

लल्लाने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं।"

"नहीं क्यों रे ? छोटी माँ तेरे नानाके यहाँ गई है, तू भी कल जा।"

लल्ला चुप रहा।

यादवने कहा, "जायगा रे लल्ला ?"

लल्लाने तकियेमें मुँह छिपाकर पहलेकी तरह सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं।"

कुछ रात रहते ही यादव अपने कामपर जानेके लिए तैयार हो जाते थे। पाँच-छह दिन बादकी बात है, एक दिन वे इसी तरह शेष रात्रिमें तैयार होकर तमाखू पी रहे थे।

अन्नपूर्णाने कहा, "अबेर हुई जा रही है—"

यादवने व्यस्त हो हुक्का रखकर कहा, "आज मन बड़ा खराब-सा है बड़ी बहू, रात मुझे मालूम हुआ कि मेरी बहू रानी उस दरवाजेकी ओटमें आकर खड़ी हुई हैं।"

इसके बाद 'दुर्गा दुर्गा' कहकर वे चल दिये।

सबेरे अन्नपूर्णा क्लान्त भावसे रसोईका काम कर रही थी। उस घरके नौकरने आकर समाचार दिया 'बाबू कल रातको फरासडाँगा चले गये हैं, छोटी बहूकी तबीयत शायद बहुत खराब है।'

अपने पतिकी बातको याद करके अन्नपूर्णाकी छाती काँप उठी, "क्या बीमारी है रे ?"

नौकरने कहा, "सो नहीं मालूम, सुना है बार बार बेहोशी आती है और बहुत बड़ी बीमारी हो गई है।"

शामके बाद घर आनेपर यादवने जो खबर सुनी, उससे वे रो दिये, "कितनी साधसे सोनेकी प्रतिमा घर लाया था बड़ी बहू, तुमने उसे पानीमें बहा दिया। मैं अभी तुरत जाऊँगा।"

दुःख और ग्लानिके मारे अन्नपूर्णाकी छाती फट रही थी। अमूल्यसे भी शायद वे छोटी बहूको ज्यादा प्यार करती थीं। अपनी आँखें पोंछकर और पतिके पैर धोकर जबरदस्ती उन्हें संध्या करनेके लिए बिठाकर, वे अँधेरे बरामदेमें आकर बैठी रहीं। कुछ देर बाद ही बाहर माधवकी आवाज सुनाई दी। अन्नपूर्णा जी-जानसे अपनी छाती थामकर दोनों कानोंमें उँगली देकर कड़ा जी करके बैठी रहीं।

माधव रसोईघरमें अँधेरा देखकर इधरवाले कमरेमें आये और अँधेरेमें अन्नपूर्णाको देखकर सूखे स्वरमें बोले, "भाभी, सुन लिया होगा शायद ?"

अन्नपूर्णा मुँह न उठा सकी।

माधवने कहा, "अमूल्यका जाना एक बार बहुत जरूरी है। शायद आखिरी समय आ पहुँचा है।"

अन्नपूर्णा औंधी पड़कर जोरसे रो उठी। यादव उस कमरेसे पागलकी भाँति दौड़ आये और बोले, "ऐसा नहीं होगा, माधव! मैं कहता हूँ न, नहीं हो सकता। मैंने अपने जानमें-अनजानमें किसीको दुःख नहीं दिया, भगवान् मुझे इस उमरमें कभी ऐसा दण्ड न देंगे।"

माधव चुप हो रहे।

यादवने कहा, "मुझे सब बातें खोलकर बता। मैं जाकर बहू रानीको वापस लिवा लाऊँगा,—तू व्याकुल मत हो माधव,—गाड़ी है साथमें ?"

माधवने कहा, "मैं व्याकुल नहीं हुआ भइया, पर आप खुद क्या कर रहे हैं ?"

"कुछ भी नहीं। उठो बड़ी बहू, आ रे अमूल्य—"

माधवने बाधा देते हुए कहा, "रात बीत जाने दो न भइया!"

"नहीं नहीं, सो नहीं होगा,—तू घबरा मत माधव,—गाड़ी बुला, नहीं तो मैं पैदल ही चल दूँगा।"

माधव और कुछ न कहकर गाड़ी लाने चल दिया। गाड़ी आनेपर चारों ही जने उसपर बैठ लिये।

यादवने कहा, "उसके बाद ?"

माधवने कहा, "मैं तो था नहीं, ठीक नहीं जानता। सुना है कि चार-पाँच दिन पहले खूब जोरका बुखार था, और बार बार बेहोशी आती थी। तबसे अबतक कोई उसे दवा या एक बूँद दूध तक नहीं पिला सका है। ठीक कह नहीं सकता कि क्या हुआ है, पर आशा तो अब नहीं है।"

यादव जोरके साथ बोल उठे, "खूब है, सौ बार आशा है मेरी बहू रानी जिन्दी है। माधव, भगवान् मेरे मुँहसे इस आखिरी उमरमें झूठ बात न कहलवायेंगे, मैं आज तक झूठ नही बोला।"

माधव उसी वक्त झुककर अग्रजके पाँव छूकर और हाथ माथेसे लगाकर चुपचाप बैठा रहा।

९

कितने दिनोंसे बिन्दो बिना खाये-पीये अपनेको क्षय करती चली आ रही थी, सो किसीको भी मालूम नहीं हुआ। मायके पहुँचते ही उसे बुखार आ गया। दूसरे दिन दो-तीन बार बेहोशी आई,—उसकी आखिरी बेहोशी मिटना ही नहीं चाहती थी। बहुत कोशिशोंके बाद, बहुत देर पीछे, जब उसे थोड़ा होश आया, तब उसकी नाड़ी बिलकुल बैठ-सी गई थी। समाचार पाकर माधव आये। उसने पतिके पैर छूकर सिरसे हाथ लगाया, पर अपनी दाँती मीच ली, सैकड़ों अनुनय-विनय करनेपर भी एक बूँद दूधतक उसने नहीं पिया।

माधवने हताश होकर कहा, "आत्मघात क्यों कर रही हो?"

बिन्दोकी आँखोंके किनारोंसे आँसू ढलकने लगे। कुछ देर बाद उसने धीरे धीरे कहा, "मेरा सब कुछ लल्लाका है। सिर्फ दो हज़ार रुपये नरेन्द्रको देना और उसे पढ़ाना, वह मेरे लल्लाको प्यार करता है।"

माधवने दाँतोंसे जोरके साथ ओठ दाबकर अपने रोनेको रोका।

बिन्दोने इशारेसे उन्हें और भी पास बुलाकर चुपकेसे कहा, "उसके सिवा और कोई मुझे आग न दे।"

माधवने इस धक्केको भी सम्हालकर उसके कानमें कहा, "देखना चाहती हो किसीको?"

बिन्दोने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, रहने दो।"

बिन्दोकी माँने एक बार दवा पिलानेकी कोशिश की, पर बिन्दोने उसी तरह मजबूतीसे दाँती मीच ली।

माधव उठके खड़े हो गये, बोले, "सो नहीं होगा बिन्दु। हम लोगोंकी बात नहीं सुनी तुमने, पर जिनकी बात टाल नहीं सकतीं, मैं उन्हींको लेने जाता हूँ। सिर्फ इतनी बात मेरी मान लेना, तुम्हें लौटकर देख पाऊँ।"

माधवने बाहर आकर आँखें पोंछ डालीं। उस रातको बिन्दु शान्त होकर सो गई तब सूर्योदय हो ही रहा था। माधव कमरेमें घुसे और उनके दीआ बुताकर

खिड़कियाँ खोलते ही बिन्दोने आँख खोलकर सामने ही जो प्रभातके स्निग्ध प्रकाशमें पतिका मुँह देखा, तो जरा मुसकराकर कहा, "कब आये ?"

"अभी चला आ रहा हूँ। भइया पागल-सरीखे रो धो रहे हैं।"

बिन्दोने धीरेसे कहा, "सो मैं जानती हूँ। उनके चरणोंकी रज लाये हो ?"

माधवने कहा, "वे बाहर बैठे हुए तमाखू पी रहे हैं, भाभी हाथ-पाँव धो रही हैं, लल्ला गाड़ीहीमें सो गया है,—ऊपर सुला दिया है। ले आऊँ ?"

बिन्दो कुछ देर स्थिर रहकर, "नहीं, रहने दो" कहके धीरे-से करवट लेकर दूसरी ओर मुँह करके पड़ रही।

अन्नपूर्णाके कमरेमें आकर उसके सिरहानेके पास बैठकर सिरपर हाथ फेरते ही वह चौंक पड़ी। अन्नपूर्णा मिनट-भर अपनेको रोककर फिर बोली, "दवाई क्यों नहीं खाती री छोटी ? मरना चाहती है, क्या इसलिए ?"

बिन्दोने जवाब नहीं दिया।

अन्नपूर्णाने उसके कानके पास मुँह ले जाकर चुपके-से कहा, "मेरी छाती फटी जा रही है, सो समझती है ?"

बिन्दोने उसी तरह धीरे-से जवाब दिया, "सब समझ रही हूँ, जीजी।"

"तो फिर मुँह फेर इधर। तेरे जेठजी तुझे घर ले जानेके लिए आये हैं। तेरा लल्ला रो-रोकर सो गया है। बात सुन, मुँह फेर इधर।"

बिन्दोने तो भी मुँह नहीं फेरा। सिर हिलाकर कहा, "नहीं जीजी पहले—"

इसी समय यादवके दरवाजेके पास आकर खड़े होते ही अन्नपूर्णाने बिन्दोके माथेपर चद्दर खींच दी। यादवने क्षण-भर आपाद-मस्तक वस्त्रसे ढकी हुई अपनी अशेष स्नेहकी पात्री छोटी बहूकी तरफ देखा और अपने आँसू रोकते हुए कहा, "घर चलो बहूरानी, मैं लिवाने आया हूँ।"

उनके सूखे और कमज़ोर चेहरेकी तरफ देखकर उपस्थित सभीकी आँखें भर आईं। यादव फिर एक क्षण मौन रहकर बोले, "और एक दिन, जब तुम इतनी-सी थीं बेटी, तब मैं आकर अपने घरकी लच्छमी रानीको लिवा ले गया था। यहाँ फिर आना होगा, यह मैंने नहीं सोचा था।—सो बेटी, सुनो; जब आया हूँ तब या तो साथ साथ लिवा जाऊँगा, या फिर उस घरकी तरफ मुँह ही न करूँगा। जानती तो हो रानी बिटिया, मैं झूठ नहीं बोलता।

यादव बाहर चले गये। बिन्दोने मुँह फेरकर कहा, "लाओ जीजी, क्या खाने देती हो। और लल्लाको मेरे पास लिटाकर तुम सब बाहर जाओ और आराम करो अब डर नहीं है, मैं मरूँगी नहीं।"

बोझ

१—ब्याह

सागरपुरमें आज बड़ी धूमधाम है, नौबत और नगाड़ोंकी धूममे गाँवका गाँव गरम हो उठा है। एक हफ्तेसे यहाँ ऐसा ऊधम मच रहा है, सो गाँव और उसके इर्द-गिर्द चार-पाँच कोसके सभी लोग जानते हैं। इस राजसूय यज्ञमें ढोल-नगाड़ोंका ऐसा महान् एकत्र समावेश, नौबतवालोंका ऐसा आदर्श ऐक्य-भाव और काँसेके बाजोंका ऐसा प्रचण्ड विक्रम दिखाई दिया था कि गाँववालोंने इसके पहले ऐसा काण्ड कभी न देखा था। तरह तरहके बाजोंकी सहायताने मनुष्य-जातिमें जो आनन्द कोलाहल उठ खड़ा हुआ, उनसे गाँवके पशु बहुत ही नाखुश हो उठे थे,—खासकर गाय बछड़े। ढोल-नगाड़ोंकी आत्म-द्रोहितासे उनकी मर्म-पीड़ाकी सीमा न रही थी। इतने समारोहका कारण था एक नाबालिग चौदह सालके लड़केका ब्याह! सागरपुरके ज़मीदार श्रीमान् हरदेव मित्रके एकमात्र पुत्रके विवाहोपलक्ष्यमें यह धूम मची है। हरदेव मित्र काफी बड़े आदमी हैं, लगभग पचीस-छब्बीस हजार रुपये सालाना उनकी आय है। पुत्रका नाम है श्रीयुत सत्येन्द्रकुमार मित्र, जो हेयर साहबके स्कूलमें एण्ट्रेंस क्लासमें पढ़ता है। इतनी कम उमरमें ब्याह होनेका कारण है सत्येंद्रकी माँकी साध कि वे अपने इकलौते बेटेकी बहूका मुँह जल्दीसे जल्दी देखें!

वर्द्धमान जिलेके दिलजानपुरके जमींदार श्रीमान् कामाख्याचरण चौधरीकी कनिष्ठा कन्या सरलाके साथ सत्येंद्रका ब्याह हो गया।

गोरी सुन्दर बहू है, सत्येन्द्र बहुत ही खुश है।

दस सालकी सुन्दर छोटी गोरी बहूका मुँह देखकर सत्येंद्रकी माँ भी बहुत ही प्रसन्न हुईं। ब्याहके दूसरे ही साल हरदेव बाबू बहूको विदा करा लाये। कारण, गृहिणीका ऐसा अभिप्राय न था कि बहूको वे मायकेमें ही छोड़ दें।

वे अकसर कहा करती थीं कि ब्याहके बाद लड़कीको मायकेमें नहीं रखना चाहिए !—उनकी राय तो बुरी नहीं थी !

सत्येन्द्रके पढ़नेकी सहूलियतके लिए हरदेव बाबूको सस्त्रीक कलकत्ते ही रहना पड़ता था, सरला भी कलकत्ते आ गई। कम उमरमें ब्याह हुआ था, इसलिए सरला हरदेव बाबूसे बोलती थीं,—यहाँ तक कि सत्येन्द्रके मौजूद रहनेपर भी वह साससे बातें करती थी। सासको इससे आनन्दके सिवा दुःख न होता था।

कुछ दिन बाद कामख्या बाबू सरलाको अपने यहाँ लिवा ले गये। इसके दो-एक महीने बाद सत्येन्द्रने एक बार गुस्सा होकर कहा, "किताबोंमें गर्द चढ़ गई है, दावातमें स्याही सूख गई है,—ऐसा कोई नहीं है कि इन्हें देखे-भाले !"

बात माँने समझी, हरदेव बाबूके भी कानोंतक पहुँच गई; उन्होंने हँसकर बहूकी विदा करा लानेको आदमी भेज दिया। लिख दिया, "यहाँ घरमें बड़ा उपद्रव उठ खड़ा हुआ है, बहूके आये बगैर शायद थमनेका नहीं ! इसलिए बहूकी विदा कर दीजिएगा।"

सरला फिर आई। सत्येन्द्रके छोटे-मोटे काम वही किया करती थी। किताबोंको पोंछ-पाँछकर ठीकसे सजाकर रखना, कॉलेज जानेके कपड़े ठीकसे तैयार रखना,—अर्थात् जल्दीमें दो कफोंमें दो तरहके बटन न लग जायँ, अथवा खानेमें बहुत देर हो गई है, कालेजका घंटा बीता जा रहा है, ऐसे मौक़ेपर कहीं एक पाँवमें कार्पेटका जूता और दूसरेमें वार्निशका जूता न पहिना जाय, उजले साफ कोटपर कहीं रजक-भवनको शुभ-गमन करनेके लिए तैयार किया हुआ दुपट्टा जुल्म न कर बैठे,—इन सब कामोंको सरला ही सम्हाला करती थी। सरलाके न रहनेसे अकसर ऐसी ही गड़बड़ हुआ करती थी। ऐसा अन्यमनस्क आदमी कभी किसीने न देखा होगा ! ये सब काम सरलाके सिवा और किसीसे होते भी न थे, और होते भी थे तो वे सत्येन्द्रकी आँखपर न चढ़ते,—इससे सरला ही को सब करना पड़ता था।

२–सुशीलाके बच्चेका अन्नप्राशन

सुशीला सरलाकी बड़ी जीजी है। उसके लड़केका अन्नप्राशन है। लिहाजा कामाख्या बाबू अपने दोहतेके अन्नप्राशनके अवसरपर सरलाको विदा करानेके लिए कलकत्ते आये।

सरलाकी जीजीने सरला और सत्येन्द्रको आनेके लिए विशेष अनुरोधके साथ पत्र लिखा है। विशेषतः इसलिए कि सरला करीब तीन सालसे दिलजानपुर नहीं गई। सत्येन्द्र भी जब चलनेके लिए राजी हो गया, तब कामाख्या बाबू परम आनन्दसे दामाद और लड़कीको लेकर देश चले आये।

सरलाकी माँ बहुत दिनों बाद लड़की और दामादको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। जिसके लड़केका अन्न-प्राशन है, उसने आकर दोनोंको बहुत-सी बातें सुना दीं, और अनेक प्रकारसे उन्हें खुश कर दिया।

शुभ कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जानेके बाद सत्येन्द्रने घर जाना चाहा; पर सासने इसपर विशेष आपत्ति की, कहा, "इतने दिनों बाद आये हो, और भी कुछ दिन रह लो।"

सरलाने भी नहीं छोड़ा, लिहाजा और भी दो-चार दिन रहनेके लिए सत्येन्द्र राजी हो गया। दो चार दिन बीत गये, मगर फिर भी सरलाने छोड़ना नहीं चाहा! परन्तु विना जाये भी काम नहीं चल सकता, पढ़ाई-लिखाईकी विशेष हानि होगी; परीक्षाको भी ज्यादा दिन नहीं हैं। चलते समय सरलाने पूछा, "मुझे फिर कब लिवा जाओगे?"

सत्येन्द्रने कहा, "जब जाओगी, तभी।"

"तो मुझे दस-बारह दिन बाद ही ले जाना।"

सत्येन्द्र अत्यन्त आनन्दित हुआ। उसने इतना नहीं सोचा था!

फिर सरलाने आँसुओंमेंसे पतिको विदा करते हुए कहा, "देखना मेरे लिए ज्यादा सोच मत करना, और रात-भर पढ़ पढ़कर बीमार मत हो जाना।"

रातको दस बजेसे ज्यादा न पढ़नेके लिए सरलाने अपने सिरकी कसम दिला दी। न जाने कैसा रीता रीता-सा उदास मन लेकर सत्येन्द्र कलकत्ते पहुँचा।

सत्येन्द्र एक पुस्तक लिये बैठा था। पुस्तकके पन्नोंके साथ मनका जबरदस्त द्वन्द्व युद्ध होने लगा :

सत्येन्द्रने गिनकर देखा, दिन-भरमें उसने सिर्फ छब्बीस लाइनें पढ़ी हैं! दुःखित होकर उसने सोचा, वाह, इस तरह पढ़नेसे तो पास हो चुका! क्रमशः मामूली दुःख क्रोधमें परिणत हो गया। उसने सोचा, यह सब उसी दुष्ट सरलाका दोष है। आज पाँच दिन आये हो गये, जरा भी नहीं पढ़ सका। पहले सोचता था कि पढ़ते वक्त वह तंग किया करती है, दस बजेके बाद पढ़ न सकूँ, इसलिए बत्ती बुझा देती है, उसे कहीं भेज-भाजकर अच्छी तरह

पहूँगा। पर हुआ ठीक उससे उलटा! कल ही उसे लिवाने जाऊँगा, नहीं तो क्या शरमकी खातिर फेल हो जाऊँ?

कुछ भी हो, सत्येन्द्रनाथ इस तरहकी कोई तरकीब निकाल रहा था कि कैसे उसे बुलाया जाय? कहूँ तो कैसे कहूँ? शरम लगती है। उससे इतना प्रेम कैसे हो गया? दो दिन—

इतनेमें नौकरने आकर एक टेलिग्राम दिया, सत्येन्द्र अत्यन्त विस्मित हुआ। अब सोचनेका वक्त नहीं, कहाँका तार है?—लिफाफा खोलते ही सत्येन्द्रका हृदय काँप उठा। भीतर जो कुछ लिखा था, उससे उसका सिर एकबारगी चकरा गया। सरला बीमार है!

उसी दिन हरदेव बाबू सत्येन्द्रको लेकर दिलजानपुर चल दिये।

मकानके सामने ही कामाख्या बाबूके साथ उनकी भेंट हो गई। हरदेव बाबूने चिल्लाकर पूछा, "बहूकी तबीयत कैसी है?"

हरदेव बाबूने भीतर जाकर देखा, सरला विसूचिका रोगसे पीड़ित है। एक दिनमें ही मानों सरलाको अब पहचाना नहीं जाता। आँखें बैठ गई हैं, कमलके समान मुखड़ेपर स्याही-सी पुत गई है। अनुभवी हरदेव बाबू समझ गये, हालत अच्छी नहीं है। आँखें पोंछते हुए पुकारा, "बेटी सरला!"

सरलाने आँखें खोलकर देखा। तबतक सरलाको काफी चेत था।

"कैसी तबीयत है, बेटी?"

सरलाने हँसकर कहा, "अच्छी तो हूँ।"

दोनों ही जने समझ गये, आपसमें समझौता हो गया। सबके चले जाने पर सत्येन्द्र आकर पास बैठ गया। दारुण आतंकसे उसके मुँहसे बात नहीं निकली। फिर जबरदस्ती नीरस बैठे हुए गलेसे सत्येन्द्रने पुकारा, "सरला!" सूखा बैठा हुआ स्वर है। सो क्या हर्ज है! है तो वही चिर-परिचित स्वर, वही प्यारकी बुलाहट—सरला! इसमें क्या गलती हो सकती है? सरलाने आँखें खोलीं और देखा। उसने हरदेव बाबूको देखकर पहलेसे ही सत्येन्द्रके आनेका कुछ कुछ अनुमान कर लिया था। सरला पतिसे मजाक करना बहुत पसन्द करती है, उसने हँसकर कहा, "क्या लेने आये हो?"

बोली बैठ गई है। अब तक किसी तरह सत्येन्द्र आँसुओंको रोके हुए था, सरलाकी हालत देखकर उसका वह बालूका बाँध टूट गया।

सत्येन्द्र जानता था कि इस समय रोना नहीं चाहिए। मगर जली आँखोंको

क्या इतनी समझ है ? आँसुओंने धीरे धीरे, एकके बाद एक, बूँद बूँद टपकना शुरू कर दिया। वे आज सरलाके अंगोंमें समाये जा रहे हैं। उन्हें क्या ऐसा मौका पहले कभी मिला है ? कभी नहीं मिला। तुम्हारी या सरलाकी खातिर वे क्या ऐसे मौकेको छोड़ दें ? सरलाने कभी पतिको रोते हुई नहीं देखा। वह भी रो दी। बहुत देर बाद आँखें पोंछकर बोली, " छीः, रोते क्यों हो ? मरदोंको क्या रोना चाहिए ?

" यह क्या ?—ठीक है सरला, खूब समझीं ! अन्तर्दाहसे वे सूखकर पत्थर हो जायँ, पर एक बूँद भी बाहर न गिरने पावे। आँसू स्त्रियोंके लिए हैं, पुरुषोंको उसमें हाथ लगानेका अधिकार नहीं ! मर्म-वेदनासे जल जल जाओ, पर रोने नहीं पाओगे ! रोनेसे औरत जो हो जाओगे ! सरला, यह व्यवस्था क्या तुम्हीं लोगोंने की है ? "

सरलाने पतिका एक हाथ अपने हाथमें ले दिया और उसे दबाकर रोते हुए कहा, " दूसरा जनम मानते हो ? "

सत्येन्द्रने रोते रोते कहा, " मानता था या नहीं, सो नहीं जानता, पर आजसे पूरी तौरसे मानूँगा। "

सरलाके चेहरेपर कुछ हँसीका चिह्न दिखाई दिया।

दवा पिलानेका समय होते देख कामाख्या बाबू, हरदेव बाबू और डाक्टर साहबने कमरेमें प्रवेश किया। डाक्टरने नाड़ी देखकर कहा, " उम्मीद बहुत कम है, फिर ईश्वरकी इच्छा। "

ईश्वरकी इच्छासे दूसरे दिन सवेरे सात बजे सरलाका देहान्त हो गया।

शामके वक्त हरदेव बाबू सत्येन्द्रको लेकर कलकत्ते लौट आये।

३—फिर ब्याह

क्या जाने क्या हो गया है। राज-शय्यापर शयन करके इन्द्रत्वके सुखका कुछ कुछ अनुभव कर रहा था, किसीने झकझोरकर उठा दिया और सब सुखको मिट्टीमें मिला दिया। आधी रातके वक्त उठकर बैठ गया हूँ, नींद उचट गई है,—अपनी जीवन-सहचरीकी उसी अर्द्ध-छिन्न खाटपर पड़ा हुआ हूँ,—मैं रोऊँ या हँसूँ ? सुखके स्रोतमें अनन्तकी ओर बहा जा रहा था, सहसा मानो किन्हीं अनजान लोगोंके जालमें बँध गया हूँ, अब शायद कभी बहकर न जा सकूँगा सब कुछ जैसे उलट गया है। जीवनके केन्द्र तकको

कोई मानो खींचकर उसकी परिधिके बाहर ले गया है! कुछ भी सूझ नहीं रहा है! यह हो क्या गया?—निशीथ रात्रिमें सत्येन्द्रनाथ खिड़कीके पास बैठा हुआ सागरपुरका अन्धकार देख रहा था। पेड़ पौधे न जाने कैसे एक निस्तब्ध-भावका सत्येन्द्रके साथ विनिमय कर रहे थे।

साँय साँय करके नैश-पवन बहती हुई निकल गई। कुछ कह गई क्या! कहा क्यों नहीं? वही एक ही बात। सभी चीजें वही एक ही बात कहती फिरती हैं कि हो क्या गया है? पपीहा अब पिया पिया नहीं कहता, ठीक मानो उससे उलटा कहता है,—मर गई! हाय हाय। पिड़कुलिया भी अब अपना बोल नहीं बोलती। 'बऊ बात कर' की जगह अब वह भी 'बऊ गई मर' कहती है। सभी चीजें वही एक ही बात बार बार क्यों कहती फिरती हैं? और 'साँय साँय' करती हुई जो नैश-पवन बह रही है, वह भी ठीक मानों यही बात कहती है: नहीं है, नहीं है, वह नहीं है!

कैसी तबीयत है सत्येन्द्र? सिरमें क्या बहुत ज्यादा दर्द मालूम हो रहा है? उस बातको तो आज बहुत दिन हो गये। जरा सो जाओ न, भाई। हमेशा क्या इसी तरह उस खिड़कीके पास रहोगे? सत्येन्द्र अन्धकारमें नक्षत्र देख रहा था। उनमें जो सबसे क्षीण था, उसको और भी बड़े गौरके साथ देख रहा था।

आँखें मीचनेकी हिम्मत नहीं होती, कहीं वह खो न जाय। देखते देखते थक जानेपर वह वहीं सो जाता। सवेरे आँख खुलनेपर फिर उसीको देखनेकी कोशिश करता। प्रकाश अब उसे अच्छा नहीं लगता। चाँदनीसे अब उसे आनन्द नहीं मिलता। इतने क्षीण प्रकाशवाला नक्षत्र कहीं प्रकाशमें दिखाई दे सकता है?

सत्येन्द्र एम्० ए० में फेल हो गया है। पास होनेकी इच्छा भी अब नहीं रही। उत्साह भी अब बुझ-सा गया है, 'पास' करनेसे क्या नक्षत्र नजदीक आ जाता है?

हरदेव बाबू सपरिवार देश चले आये। सत्येन्द्र कहता है, वह घरसे ही अच्छी तरह परीक्षा दे सकता है। शहरके इतने शोर-गुलमें पढ़ाई ठीक नहीं होती। सत्येन्द्र अब कुछ और ही तरहका आदमी हो गया है। उसका चेहरा देखनेसे मालूम होता है मानो उसे बहुत दिनोंसे खानेको नहीं मिला। जैसे किसी बड़ी भारी बीमारीसे अभी अभी छुट्टी पाई है।

दोपहरको सत्येन्द्रने कमरेके किवाड़ देकर फोटोग्राफ झाड़-पोंछकर साफ किया करता, अपनी पुरानी किताबें सजाने बैठ जाता और हारमोनियमका ढँकना उठाकर यों ही साफ किया करता। सरलाकी साफ-सुथरी पुस्तकें और भी साफ करने लग जाता। अच्छे अच्छे कागज और लिफाफे लेकर सरलाको पत्र लिखता और न जाने क्या पता लिखकर अपने बाक्समें बन्द करके रख देता। सत्येन्द्रनाथ! तुम अकेले नहीं हो। बहुतोंकी तकदीर तुम्हारी ही तरह कम उमरमें जलकर खाक हो जाती है। सभी क्या तुम्हारी तरह पागल हो जाते हैं? सावधान, सत्येन्द्र! सब बातोंकी एक सीमा होती है। स्वर्गीय प्रेमकी भी एक सीमा निर्दिष्ट है। अगर सीमाको उलाँघ जाओगे, तो तकलीफ पाओगे। कोई किसीको नहीं रख सकता।

सत्येन्द्रकी माँ बड़ी बुद्धिमती हैं। उन्होंने एक दिन पतिको बुलाकर कहा, "सत्येन्द्र हमारा कैसा हो गया है, देखते हो?"

"देख तो रहा हूँ, पर किया क्या जाय?"

"दूसरा व्याह कर दो। अच्छी बहू आ जानेपर मेरा सत्य फिर हँसने लगेगा, फिर बोलने-चालने लगेगा।"

उस दिन सत्येन्द्र भोजन करने बैठा, तो माँने कहा, "मेरी बात मानेगा बेटा?"

"क्या?"

"तुझे फिर व्याह करना होगा।"

सत्येन्द्रने हँसकर कहा, "यही बात है! सो इस उमरमें अब यह सब क्यों?"

माँने पहलेहीसे आँसू संचित कर रक्खे थे, वे अब बिना बातके उतरने लगे। आँखें पोंछकर उन्होंने कहा, "बेटा, इक्कीस बरस कोई उमरमें उमर है? पर सरलाकी बात याद आनेसे ये सब बातें मुँहपर लानेको जी नहीं होता। मगर मुझसे अब अकेले नहीं रहा जाता।"

दूसरे दिन सवेरे हरदेव बाबूने भी सत्येन्द्रको बुलाकर यही बात कही। सत्येन्द्रने कोई जवाब नहीं दिया। हरदेव बाबू समझ गये, मौन सम्मतिका ही लक्षण है।

सत्येन्द्रने अपने कमरेमें आकर सरलाकी तसवीरके सामने खड़े होकर कहा, "सुनती हो सरला, मेरा व्याह होगा!" तसवीर बोल नहीं सकती। बोल सकती तो क्या कहती? कहती 'अच्छी बात है' और क्या कहती?

४—नलिनी

अबकी बार सत्येन्द्रका व्याह कलकत्तेमें हुआ। शुभ-दृष्टिके समय सत्येन्द्रने देखा, बड़ा सुन्दर चेहरा है। होने दो सुन्दर, फिर भी उसने सोचा, सिरपर एक बोझ आ पड़ा।

व्याहके बाद दो सालतक नलिनी मायकेमें ही रही। तीसरे साल वह ससुराल आई। सासने नई बहूका चाँद-सा मुखड़ा देखकर सरलाको भूलनेकी कोशिश की,—फिरसे घर-गृहस्थी चलानेकी चेष्टा की। रातको जब सत्येन्द्र और नलिनी दोनों पास पास सोते तो कोई किसीसे बोलता नहीं।

नलिनी सोचती, क्यों, इतनी उपेक्षा क्यों?

सत्येन्द्र सोचता, यह कहाँकी कौन है जो मेरी सरलाकी जगह सोया करती है!

नई बहू शरमके मारे पतिसे बात नहीं कर सकती,—सत्येन्द्र सोचता, बोलती नहीं सो ही अच्छा है!

एक दिन रातको सत्येन्द्रकी नींद खुल गई, तो उसने देखा, बिछौनेपर कोई नहीं है। अच्छी तरह निगाह फैलाकर देखा, तो कोई एक जनी खिड़कीके पास बैठी है। खिड़की खुली हुई है। खुली खिड़कीसे चाँदनी प्रवेश कर रही है; उसी उजालेमें सत्येन्द्रको नलिनीके चेहरेका कुछ अंश दिखाई दे गया। नींदकी खुमारीमें,—चाँदनीके प्रकाशमें उसका चेहरा बड़ा सुन्दर मालूम हुआ।

उसने कान लगाकर सुना, नलिनी रो रही है।

सत्येन्द्रने बुलाया, "नलिनी—"

नलिनी चौंक पड़ी। पतिदेव बुला रहे हैं! और कोई होती तो क्या करती, सो नहीं जानता,—परंतु नलिनी धीरेसे आकर पास बैठ गई।

सत्येन्द्रने कहा, "रोती क्यों हो? रोती क्यों हो?" आँसुओंकी धारा दुगुनी मात्रामें बहने लगी। उसकी सोलह वर्षकी उमरमें पतिकी यही प्यारीकी बात है।

बहुत देर तक दबा दबाके रोनेके बाद आँखें पोंछकर उसने धीरेसे कहा, "तुम्हें मैं देखे क्यों नहीं सुहाती?"

मालूम नहीं क्यों, सत्येन्द्रको भी भीतरसे बड़ी रुआई आ रही थी। उसे रोकते हुए उसने कहा, देखे नहीं सुहाती, यह तुमसे किसने कहा? हाँ, इतना जरूर है कि तुम्हारी खोज-खबर नहीं ले पाता।"

नलिनी बिना उत्तर दिये चुपचाप सब बातें सुनने लगी।

सत्येन्द्र कुछ देर चुप रहकर फिर कहने लगा, "सोचा था, यह बात

किसीसे कहूँगा नहीं; मगर कहनेसे भी कोई लाभ नहीं। तुमसे कुछ छिपाऊँगा नहीं। सब बातें खोलकर कह देता तो समझ जातीं कि मैं ऐसा क्यों हूँ। मैं अब भी सरलाको, अपनी पहली स्त्रीको, भूल नहीं सका हूँ। यह भरोसा भी नहीं है कि भूल जाऊँगा और न इच्छा ही है। तुम अभागेके हाथ आ पड़ी हो; ऐसी आशा भी नहीं मालूम होती कि मैं तुम्हें कभी सुखी कर सकूँगा। मैंने अपनी इच्छासे तुम्हारे साथ व्याह नहीं किया,—अपनी इच्छासे तुमसे प्रेम भी न कर सकूँगा।"

गम्भीर निशीथमें दोनों जने बहुत देर तक इसी तरह बैठे रहे। सत्येंद्र समझ गया, नलिनी रो रही है। वह भी रोया था क्या? एक एक करके सरलाकी बातें याद आने लगीं, धीरे धीरे उसीका चेहरा हृदयमें जाग उठा,—वही—"लेने आये हो?" याद आ गया। विना बुलाये आँसुओंने आकर सत्येंद्रकी दृष्टि रोक दी, उसके बाद वे गालोंसे ढुल-ढुलकर नीचे गिरने लगे।

आँखें पोंछकर सत्येंद्रने धीरेसे नलिनीके दोनों हाथ अपने हाथमें लेकर कहा, "रोओ मत नलिनी, मेरा इसमें क्या हाथ है? कोई नहीं जानता। रात-दिन मैं भीतर ही भीतर कैसी वेदना भोग रहा हूँ, मनमें बड़ा दुःख है। यह दुःख अगर कभी दूर हो गया, तो मैं तुम्हें शायद प्यार कर सकूँगा; और तब शायद तुम्हें जतनसे रख सकूँगा।"

इस विषाद-पूर्ण स्नेहभरी बातका मूल्य कितने जने समझते हैं? नलिनी बड़ी बुद्धिमती है। वह पतिके दुःखको समझ गई। पति उससे प्रेम नहीं करते, यह बात उसने उन्हींके मुँहसे सुनी; मगर फिर भी वह रूठी नहीं,—उसने अभिमान नहीं किया। बेवकूफ लड़की! सोलह सालकी उमरमें अगर न रूठेगी, न अभिमान करेगी, तो फिर कब करेगी? परन्तु नलिनीने सोचा, रूठना अभिमान करना पहले है, या पति पहले है?

उस दिनसे उसकी चिन्ताका एक-मात्र विषय हो गया कि किस तरह पतिका दुःख मिटे। क्या करनेसे पति सौतको भूल सकते हैं, इस बातको उसने एक बारके लिए भी नहीं सोचा। व्यथाका यदि कोई व्यथाभागी हो, कष्टमें अगर कोई सहानुभूति दिखावे, दुःखकी बात अगर कोई आग्रह या दिलचस्पीके साथ सुने, तो शायद उसके समान दुनियामें और कोई बन्धु नहीं।

इसके बाद, सत्येन्द्र अकसर नलिनीको अपनी पहलेकी बातें सुनाया करता। कितनी ही रातें दोनोंकी उसी एक ही तरहकी बातें सुनते-सुनाते बीतने लगीं।

सत्येंद्र ही सिर्फ बातें कहता था, सो नहीं,—नलिनी भी आग्रहके साथ पतिके पूर्व-प्रेमकी बातें सुनना पसन्द करती थी।

५—दो साल बाद

दो वर्ष बीत गये, नलिनी अब अठारह सालकी हो गई, उसे अब पहलेका-सा कष्ट नहीं है। पति अब उसका अनादर नहीं करते। पतिका प्यार उसने जबरदस्ती पा लिया है! जो जोर-जबरदस्तीसे लेना जानता है, वह उसे रखना भी जानता है। अब उसे कोई भी कष्ट नहीं है। सत्येंद्रनाथ इस समय पबनाका डिप्टी मजिस्ट्रेट है। स्त्रीके जतनसे, स्त्रीके सेवा-भाव और एकाग्र प्रेमसे उसमें बहुत परिवर्तन हो गया है। कचहरीके कामके बाद वह नलिनीके साथ बैठकर गप-शप करता है, मजाक करता है, और गाना-बजाना सुनकर आमोद पाता है। एक वाक्यमें, सत्येन्द्र बहुत-कुछ आदमी बन गया है। मनुष्यको जो चीज मिलती नहीं, वही उसके लिए अत्यंत प्रिय सामग्री हो जाया करती है। मनुष्यका चरित्र ही ऐसा है। तुम अशांतिमें हो, शांति ढूँढ़ते फिरते हो,—मैं शांतिसे दिन बिता रहा हूँ, तो भी न जाने कहाँसे अशान्तिको खींच ले आता हूँ।

छलको पकड़ना मानो मनुष्यका स्वभाव-सिद्ध भाव है। जो मछली भाग जाती है, क्या वही खाक बड़ी होती है? सत्येन्द्र भी आदमी है। आदमीका स्वभाव कहाँ जायगा? इतने प्यार, इतने जतन और शान्तिमें भी उसके हृदयमें कभी कभी बिजलीकी तरह अशान्ति चमक उठती है। एक लहमे-भरमें मनके अन्दर बिजलीकी क्रियाकी तरह जो क्रान्तिसी-मच जाया करती है, उसे सम्हालनेमें नलिनीको काफी परिश्रमकी आवश्यकता होती है। बीच-बीचमें उसे मालूम होता है कि अब उसके सम्हाले न सम्हाला जायगा। शायद इतने दिनोंकी कोशिश, जतन, अध्यवसाय,—सब कुछ व्यर्थ हो जायगा। नलिनीकी जरा सी त्रुटि देखते ही सत्येन्द्र सोचता, सरला होती तो शायद ऐसा नहीं होता। होता भी या नहीं, सो तो भगवान जानते हैं,—शायद न भी होता और हो सकता है कि इससे चौगुना भी होता! मगर इससे क्या? वह मछली जो भाग गई है! सत्येन्द्र अब भी सरलाको भूल नहीं सका है। कचहरीसे आते ही अगर उसे नलिनी न दिखाई दी, तो चटसे सोचता—कहाँ वह और कहाँ यह!

नलिनी बड़ि बुद्धिमती है, वह हमेशा पतिके पास रहती है; कारण उसे

मालूम है कि अब भी वे सरलाको भूले नहीं हैं। एकबारगी भूल जायँ ऐसी इच्छा नलिनीके मनमें कभी नहीं होती। पर हाँ, व्यर्थ ही याद कर करके कष्ट पाते हैं, इसीलिए वह सर्वदा पास बनी रहनेकी कोशिश करती है। न भूलें,—पर उसका तो वे निरादर नहीं करते,—यही नलिनीके लिए काफी है।

गोपीकान्त राय पबनाके एक प्रतिष्ठित वकील हैं। कलकत्तेमें उनका मकान नलिनीके घरके पास है। कोई एक सम्बन्ध होनेके कारण नलिनी उन्हें काका कहती है और उनकी स्त्रीसे काकी। राय-काकी अकसर उसके घर आया करती हैं। गोपी बाबू भी अकसर आ जाया करते हैं। गाँवके नातेके ककिया ससुरको सत्येन्द्र बहुत मानते हैं। सत्येन्द्रका मकान उनके मकानसे दूर होनेपर भी दोनों घरानेमें काफी मेल-जोल हो गया है।

नलिनी भी बीच बीचमें काकाके यहाँ चली जाया करती है; कारण, एक तो काकाका घर और दूसरे उनकी लड़की हेमाके साथ उसका काफी मेल है, बाल्य-कालकी सहेली ठहरी,—कोई किसीको छोड़ना नहीं चाहती। उस दिन बारह बज गये थे। सत्येन्द्रनाथ कचहरी चले गये थे। कोई काम नहीं देखकर नलिनी चित्र बनाने बैठ गई; परन्तु, उसी वक्त गड़गड़ाती हुई एक गाड़ी डिप्टी साहबके मकानके सामने आ लगी।

“ कौन आया ? हेमा होगी ! ” आगे सोचना न पड़ा। बड़े कोलाहलके साथ हेमाङ्गिनी आकर उपस्थित हो गई। हेमाने आकर एकदम नलिनीके बाल पकड़ लिये, बोली, “ अब ज्यादा लिखा-पढ़ी करनेकी जरूरत नहीं, उठो, हमारे यहाँ चलो, कल भइयाकी बहू आई है। ”

नलिनीने कहा, “ बहू आई है, साथ लेती क्यों नहीं आई ? ”

हेमाने, कहा, “ सो कैसे हो सकता है ? नई नई आई है, अचानक तेरे यहाँ कैसे चली आती ? ”

नलिनीने कहा, “ तो मैं ही क्यों जाने लगी ? ”

हेमाङ्गिनीने हँसकर कहा, “ तू तो जायगी सिरके बल। मैं अभी घसीटकर लिये चलती हूँ। ”

बाल पकड़कर खींचकर ले जानेपर नलिनी ही क्यों, बहुतोंको जाना पड़ता। लिहाजा नलिनीको भी जाना पड़ा।

जानेमें नलिनीको विशेष आपत्ति थी, क्योंकि हेमाके घर जानेसे लौटनेमें बहुत देर हो जाया करती है। दो-एक दिन ऐसा हो गया है कि नलिनीके लौटनेके पहले ही सत्येंद्रनाथ कचहरीसे आ गये हैं। वैसी हालतमें सत्येंद्रको

बड़ी दिक्कत होती है। वे कुछ खयाल करें या न करें, पर नलिनीको बड़ी शरम मालूम होती है; क्योंकि नलिनीको मालूम है कि कचहरीसे लौटनेके बाद उसके हाथसे पंखेकी बयार खाये बिना उसके पतिकी गरमी दूर नहीं होती। विधाताकी इच्छा। बहुत कोशिश करनेपर भी आज नलिनी सात बजेसे पहले घर नहीं लौट सकी। घर आकर उसने देखा, सत्येंद्र अखबार पढ़ रहा है, अबतक उसने खाया पीया भी नहीं। खिलानेका भार नलिनीने अपने ही हाथमें ले रक्खा था। पास पहुँचनेपर सत्येंद्र हँसा, पर वह हँसी नलिनीको अच्छी नहीं मालूम हुई। वह भीतरसे सिहर उठी। आसन बिछाकर नलिनीने जल-पान करानेकी कोशिश की, मगर सत्येंद्रने कुछ छुआ तक नहीं,—बिलकुल भूख नहीं है। बहुत मनाने-करनेपर भी उसने कुछ नहीं खाया। नलिनी समझ गई, क्यों ऐसे रूठ गये हैं।

६—तकदीर फूट गई क्या?

आज हेमाङ्गिनी अपनी ससुराल जायगी। उसके पति उपेन्द्र बाबू लेने आये हैं। नलिनी बहुत दिनोंसे हेमासे मिलने नहीं गई। इसीसे हेमाने बड़े दुःखके साथ उसे आनेके लिए लिखा है।

नलिनीने प्रतिज्ञा की थी कि पतिकी आज्ञाके बिना अब वह कहीं भी न जायगी। मगर यदि आज वह उस प्रतिज्ञाकी रक्षा करती है, तो प्रिय-सखीके साथ उसकी मुलाकात नहीं होती। नलिनी बड़ी मुसीबतमें पड़ गई। हेमाने लिखा है, तीन बजेकी गाड़ीसे रवाना होना है। तब पतिकी आज्ञा कैसे ली जा सकती है! बहुत कुतर्कोंके बाद नलिनीने जानेका ही निश्चय किया। जाते वक्त दासीसे वह कह गई कि ठीक तीन बजे राय बाबूके यहाँ गाड़ी पहुँच जानी चाहिए। गाड़ी भेजी भी गई पर हेमाका तीन बजेकी गाड़ीसे जाना नहीं हुआ, लिहाजा उसने नलिनीको किसी तरह भी नहीं छोड़ा। बहुत जिद करनेपर भी वह हेमाके हाथसे बचकर न आ सकी। हेमा आज बहुत दिनोंके लिए चली जा रही है। न जाने फिर कितने दिनों बाद भेंट होगी।—आसानीसे कैसे छोड़ दे?

यह बात कहनेमें नलिनीको शर्म मालूम होती थी कि घर लौटनेमें देर हो जानेसे पति नाराज होंगे,—और फिर इस बातको सहजमें कहना कौन चाहता है! इतनी हीनता कौन स्वीकार करता है! खासकर इस उमरमें! अन्तमें यह बात भी उसने कह दी पर हेमाने उसपर विश्वास ही नहीं किया। उसने

हँसकर कहा, "मुझे बेवकूफ मत समझना। नाराजी-आराजीकी बात मैं खूब समझती हूँ। उपेन्द्र बाबू भी बहुत नाराज होना जानते हैं।"

उसकी बात हेमाने हँसीमें उड़ा दी; पर नलिनीको हार्दिक कष्ट हुआ। सबके पति क्या एक ही साँचेमें ढले हुए होते हैं? सभी क्या उपेन्द्र बाबूकी तरह हैं?

नलिनी जब घर लौटी तब रातके दस बज चुके थे। घर आकर उसने सुना, बाबू बाहर सो गये हैं!

मातङ्गिनी उर्फ मातो नलिनीके मायकेकी नौकरानी है, नलिनीसे अत्यन्त स्नेह करती है; इसीसे आज उसने नलिनीको दस बीस कड़ी बातें सुना दीं। घर-भरमें सिर्फ उसीको यह बात मालूम थी कि सत्येन्द्रने बहुत गुस्सा होकर ही बाहरके कमरेमें बिस्तर करनेकी आज्ञा दी है।

गंभीर रात्रिमें, जब कि बिस्तरपर पड़ा हुआ सत्येन्द्र आँखें मीचे अपनी पूर्व स्मृतियोंको ताजा करनेकी कोशिश कर रहा था, और यह विचार रहा था कि बहुत दिनोंसे गायब प्रफुल्ल कमलके समान सरलाके उस मुखड़ेके साथ नलिनीके चेहरेका कुछ सादृश्य है या नहीं, और जब कि उसके मनमें सरलाके प्रेमके सामने नलिनीके प्रेमको, सागरके सामने गोष्पदका जल समझनेकी आँधी बह रही थी, तब धीरेसे दरवाजा खोलकर नलिनीने उस कमरेमें प्रवेश किया। सत्येन्द्रने आँख उठाकर देखा, नलिनी है। नलिनी आकर उसके पाँयते बैठ गई। सत्येन्द्रने आँखें मीच लीं। बहुत देर इसी तरह बीत गई, यह देख सत्येन्द्र नाराज हो गया। उसने करवट बदलकर परुष-भावसे स्पष्ट स्वरमें कहा, "तुम यहाँ क्यों?"

नलिनी रोती थी, कुछ बोल न सकी। रोते देखकर डिप्टी-साहब कुछ और भी क्रुद्ध भावसे बोले, "काफी रात हो चुकी है, जाओ, भीतर जाकर सो रहो।"

नलिनी रो रही थी; अबकी बार उसने आँसू पोंछते हुए कहा, "तुम चलो न सोने।"

सत्येन्द्रने सिर हिलाया, वह बोला, "मुझे बड़ी नींद आ रही है, अब नहीं उठ सकता।"

रोनेसे सत्येन्द्र नाराज होता है। नलिनीने आँखोंके आँसू पोंछ डाले हैं; पतिके सामने अब वह रोयेगी नहीं। धीरेसे पाँवोंपर हाथ रखकर उसने कहा, "अबकी बार मुझे माफ कर दो। यहाँ तुम्हें बड़ी तकलीफ होगी,—भीतर चलो।"

सत्येन्द्रने प्रतिज्ञा कर ली है, अब वह भीतर न जायगा! उसने कहा, "इतनी रात बीते तकलीफकी बात सोचनेकी जरूरत नहीं; तुम सोओ जाकर,

मैं भी सोता हूँ।"

नलिनी सत्येन्द्रको पहचानती थी। उसने अपने कमरेमें जाकर सारी रात रोते हुए बिताई। कहाँ गई हेमाङ्गिनी, एक बार देख क्यों नहीं जाती? नाराजी-आराजीकी बात तो खूब समझती है,—अब मिटा देगी क्या इस झगड़ेको?

दूसरे दिन भी सत्येन्द्र घरके भीतर नहीं गया, न नलिनीसे साक्षात् कर सका।

नलिनीने एक चिट्ठी लिखकर मातोके हाथ भेजी! सत्येन्द्रने उसे विना पढ़े ही फाड़कर फेंक दिया और कहा, "यह सब अब मत लाया करो।"

चार-पाँच दिन बाद, एक दिन नलिनीके बड़े भाई नरेन्द्रबाबू पटना आ पहुँचे। सहसा भइयाको देखकर नलिनी अत्यन्त सन्तुष्ट हुई, परन्तु उससे भी अधिक विस्मित भी हुई।

"भइया, कैसे?"

नरेन्द्र बाबूने नलिनीसे मिलकर हँसते हुए कहा, "घर चलनेके लिए तू इतनी उतावली क्यों हो रही है, बहिन?"

"उतावली?"

इस बातका अर्थ नलिनी उसी वक्त समझ गई। उसने हँसते हुए कहा "तुम लोगोंको बहुत दिनोंसे देखा नहीं जो!"

७—फूट गई

जिस दिन पतिके चरणोंमें प्रणाम करके नलिनी अपने भइयाके साथ गाड़ीपर सवार होकर चली गई, उस दिन रातको सत्येन्द्रनाथ जरा भी न सो सका। वह रात-भर सोचता रहा, इतना न करनेसे भी काम चल जाता। बहुत रात तक उसके मनमें आता रहा, अब भी समय है, अब भी गाड़ी लौटा लाई जा सकती है। पर हाय रे अभिमान! उसीके कारण नलिनीको वापस न लाया जा सका।

जाते समय मातो भी नलिनीके साथ गई। वही सिर्फ इस विदाका कारण जानती थी। नलिनीने मातोको खास तौरसे मना कर दिया कि वह घरमें इस बातका क़तई जिक्र न करे। नलिनीने सोचा कि इस बातको प्रकट करनेसे पतिका अपयश होगा। अच्छे हों चाहे बुरे, उसके पतिको लोग बुरा कहनेवाले होते कौन हैं?

मायके जाकर नलिनीने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, छोटे भइयाको गोदमें उठा लिया, सब कुछ किया; पर वह हँस न सकी।

माँने कहा, "मेरी नलिनी एक ही दिनकी गाड़ीकी थकानसे सूख गई है।" मगर वह सूखा मुँह फिर प्रसन्न नहीं हुआ।

संसारमें अकसर देखा जाता है कि किसी मामूली कारणसे भी गुरुतर अनिष्टकी उत्पत्ति हो जाया करती है। शूर्पणखाका मामूली चित्त-चांचल्य स्वर्णलंकाके ध्वंसका कारण बन गया था। एक मामूली रूप-लालसाके कारण ट्राय नगर नष्ट हो गया। महानुभाव राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त साधारण कारणसे ही विपद्ग्रस्त हुए थे। संसारमें ऐसे दृष्टान्तोंका अभाव नहीं है। यहाँ भी एक साधारण अभिमानके कारण भयानक विपत्ति टूट पड़ी, सत्येन्द्रनाथको क्या दोष दिया जाय?

नलिनीने कभी अभिमान नहीं किया,—पतिके कष्टकी बात याद करके वह चुपचाप सब सह रही थी,—पर अब उससे न सहा गया। उसने सोचा, इस छोटेसे कारणसे वह पतिके द्वारा त्याग दी जाय, इससे वह मर ही क्यों नहीं जाती?

भीषण अभिमानसे नलिनी सूखने लगी। उधर सत्येन्द्रका अभिमान निबट चुका है। एक घड़ी बिना रहे जिसका काम नहीं सरता, उसका यह झूठा अभिमान कै दिन रह सकता है? अभिमान घोर कष्टका कारण बन गया है। सत्येन्द्र हररोज बाट देखता रहता है,—आज शायद नलिनीको चिट्ठी आयेगी, शायद लिखेगी कि 'मुझे आकर लिवा ले जावो'। सत्येन्द्र सोचता, तब तो सिर माथे करके ले आऊँगा, अब किसी तरहका अनुचित व्यवहार न करूँगा। मगर भवितव्यको कौन उलाँघ सकता है? जो होना है, वही होगा। तुम और हम क्षुद्र प्राणी मात्र हैं। आज-कल करते हुए छह महीने बीत गये, अभागिनने कोई भी बात नहीं लिखी। पापिष्ठ सत्येन्द्रनाथ टूट गया। पर नवा नहीं। छै महीने बीत गये। क्रमशः सत्येन्द्रको असह्य हो गया। लुप्त अभिमान फिर ताजा हो उठा, और फिर उसमें क्रोध भी आकर शामिल हो गया। हिताहित-ज्ञान-रहित होकर सत्येन्द्रने अपना दोष नहीं देखा। सोचने लगा, जिसे इतना अहंकार है, उससे प्रतिशोध भी वैसा ही लेनेकी आवश्यकता है।

किसीने भी अपना दोष नहीं देखा। दोनों अर्द्धमिलित हृदय फिर हमेशाके लिए भिन्न भिन्न हो चले। यौवनके प्रारम्भमें संकुचिता लताको किसने खींचकर बढ़ाया था? मगर अब सहा नहीं जाता, अब तो टूटनेकी नौबत आ पहुँची है।

सत्येन्द्रनाथ! तुम्हें दोष नहीं देता, उसको भी नहीं दिया जा सकता। दोनोंने ही गलती की है,—अपराध नहीं किया। इस बातको भगवान् ही जानते हैं कि गलती दिखा देनेसे आत्म-ग्लानि किसीको अधिक होती। हम भी

न समझ सकते और न तुम्हारी ही समझमें आता। समझमें नहीं आता कि किस आकांक्षा,—किस साधकी पूर्तिके लिए तुम लोगोंने इतना कर डाला!

साध नहीं मिटती; मिटानेकी इच्छा भी नहीं। क्या साध है, सो भी शायद अच्छी तरह समझ नहीं सकता। फिर भी कातर हृदय न जाने कैसी एक अतृप्त आकांक्षासे हर वक्त हाहाकार कर उठता है। क्या हुआ करता है, क्यों इस तरहकी अदृश्यगति उस लक्ष्यहीन प्रान्तमें परिचालित होती है,—किसी भी तरह इसका निर्णय नहीं किया जा सकता।

जो होनहार है, वह होगा ही। इच्छा होनेपर भी,—मनके साथ द्वन्द्व-युद्ध करनेपर भी, तुम्हें अपराधसे छुटकारा दूँगा। दूँगा क्या?

८—सुहाग-रात

ऐसी रूपवती गुणवती बहू है, तो भी लड़केको पसन्द नहीं आई! गृहिणीको बड़ा दुःख है। यह सोचकर वे अत्यन्त उदास हो रही हैं कि ऐसी चन्दा-सी बहूके आनेपर भी वे घरगिरस्ती न कर सकीं। माताकी सैकड़ों कोशिशोंसे भी पुत्रका मन न फिरा। अब और उपाय ही क्या है? 'लड़केको ही अगर पसन्द नहीं आई, तो फिर बहू कैसी? लड़केके आदरसे ही तो बहूका आदर है!—और मेरा भी इसमें क्या हाथ है? खुद देखभालकर ब्याह कर ले, तो क्या मैं रोक सकती हूँ?' इत्यादि मीठे वचनोंकी आवृत्ति करते करते अपने अभ्यासके अनुसार वे 'वरण-डाला'* सजाने बैठ गईं!

दो साल पहले हरदेव बाबूका देहान्त हो चुका है। उस बातकी याद आ गई,—आँखोंमें आँसू भर आये; फिर नलिनीकी याद आ गई,—आँसुओंका वेग और भी बढ़ गया। क्या जाने, कैसी बहू आयेगी? सत्येन्द्रके बाप होते, तो शायद अभागिनीकी ऐसी हालत न देखनी पड़ती।

सत्येन्द्र ब्याह करके आ गया। माँने 'वरण' करके दोनोंको घरमें लिया। जली आँखोंमें फिर पानी भर आया। आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा, "आँखोंमें कुछ पड़ गया है, बार बार पानी आ जाता है!"

गिरिबाला बड़ी मुँहफट लड़की है,—खासकर नलिनीके साथ उसका बहनापा था। वह कह बैठी, "इस उमरमें तीन बार तो हो चुका, और भी कितनी बार क्या क्या पड़ेगा, कौन जानता है?"

* वर-वधूकी अभ्यर्थना करनेके लिए उपकरण-पात्र।

बात उन्होंने सुन ली, सत्येन्द्रके भी कानों तक पहुँच गई। कल साधकी सुहाग-रात है।

जाने कहाँसे बड़े ठाट-बाटके साथ एक भारी-भरकम सौगात आई है। वर वधूके लिए ढाकेकी साड़ी, धोती, चादर इत्यादि बहुत अच्छी अच्छी चीजें हैं उसमें। दुलहिनके लिए जैसी बनारसी साड़ी आई है वैसी सुन्दर साड़ी इसके पहले इस गाँवमें कभी किसीने देखी तक नहीं। सभी पूछ रहे हैं, 'कहाँकी सौगात है?' माँ बार बार घूँट-सा भरकर कह देती हैं, 'सत्येन्द्रके किसी मित्रने भेजी है।'

गृहिणीने आँखोंके आँसू दबाकर वास्तविक समाचारको छिपाकर हँसते-रोते मुँहसे सौगातकी मिठाई आदि बँटवा दी।

सब अपना अपना हिस्सा लेकर चली गई। जाते समय राजबालाने कहा, "अच्छी सौगात है।" नृत्यकालीने कहा, "सो क्यों न होगी? बड़े आदमियोंके यहाँसे ऐसी ही सौगात आया करती है।"

क्रमशः जब यह बात दब गई, तब योगमाया कह उठी, "अच्छा, फिरसे ब्याह क्यों किया?" ज्ञानदाने कहा, "क्या जानें बहिन, ऐसी रूप-गुणवती बहू थी। क्या मालूम, कुछ समझमें नहीं आता।"

राममणि नाईकी लड़की है; उसकी हालत अच्छी है। देखनेमें भी बुरी नहीं है; हाँ, जरा नाक चपटी है। कोई कोई ईर्ष्यालु उसकी आँखोंमें भी दोष दिखाया करते हैं; कहते हैं, 'हाथीकी आँखोंसे भी छोटी आँखें हैं।'

खैर, जाने दो, इस निन्दावादसे हमें कोई मतलब नहीं। राममणिने जरा हँसकर कहा, "तुम्हारे घटमें अगर बुद्धि होती, तो क्या ऐसी बातें करतीं? वह हर हमेश ठहक ठहकके हँस हँसके जो बातें करती थी, उसीसे मुझे सन्देह हो गया था,—स्वभाव-चरित्र उसका अच्छा नहीं था री, अच्छा नहीं था। नहीं तो इस तरह निकाल देते? और फिर ब्याह करते?"

मुँहसे किसीके कुछ न कहनेपर भी बहुतोंकी रायसे उसकी राय मिल गई।

इसके दो-एक दिन बाद गाँवके लगभग सभी लोग जान गये कि राममणिने जमींदारके घरका गूढ़ रहस्य जान लिया है। नाईकी लड़की न होती तो क्या इतनी बुद्धि बाम्हन कायथकी लड़कीमें हो सकती है? बात बहुतोंने मंजूर कर ली।

अब गृहिणीको पारी है। यह बात जब उनके कान तक पहुँची, तब वे घरके किवाड़ बन्द करके एकबारगी जमीनपर लोटने लगीं। मेरी नलिनी कुलटा

है ! मालूम नहीं, क्यों वे सरलाकी अपेक्षा नलिनीको अधिक प्रेम करने लगी थीं ! जिन्दगी-भरके लिए उस नलिनीकी तकदीर फूट गई थी। गृहिणीने मन ही मन सोचा, सत्येन्द्र रक्खे तो अच्छा ही है, नहीं तो मैं उसे लेकर काशी-वास करूँगी। अभागिनीकी इस जनमको सभी साधें मिट गई।

तब उन्होंने किवाड़ खोलकर मातोको पास बुलाकर किवाड़ बन्द कर लिए। मातो ही सौगात लेकर आई थी।

दोनोंमें आँसूओंका काफी विनिमय हुआ। किस तरह नलिनीका सुनहला रंग स्याह हो गया है, किस अपराधसे सत्येन्द्रने उसे पैरोंसे ठुकराया है, कितने कातर वचनोंसे उसने सासको प्रमाण कहलाया है,—इत्यादि विवरण मातङ्गिनीने खूब अच्छी तरह धीरे धीरे आँसू पोंछते हुए कह सुनाया। सुनते सुनते गृहिणीका पूर्व-स्नेह सौगुना बढ़ आया, और पुत्रपर दारुण अभिमान पैदा हो गया। मन ही मन वे सोचने लगीं, मैं क्या सत्येन्द्रकी कोई भी नहीं हूँ ! क्या मेरी सभी बातें उपेक्षाके योग्य हैं ! मेरी क्या एक भी बात नहीं रहेगी ! मैं फिर नलिनीको घर लाऊँगी। मेरी लच्छमीकी क्या ऐसी दशा करना चाहिए !

उसी दिन शामको जननीने पुत्रको बुलाकर कहा, " नलिनीको ले आओ।"

पुत्रने सिर हिलाकर कहा, " नहीं। "

माँ रो दीं, बोलीं, " ओ रे, मेरी नलिनीके नामपर गाँव-भरमें कलंक फैल रहा है, तू उसका पति है,—उसकी इज्जत न रखेगा ! "

" कैसा कलंक ? "

" इस तरहसे निकाल देने और फिर ब्याह कर लेनेसे मैं किस किसका मुँह बन्द कर सकती हूँ ? "

" मुँह बन्द करके क्या होगा ? "

" तो भी लायेगा नहीं ? "

नहीं। "

माँ बहुत नाराज हो गईं। यह वे पहलेसे ही तय कर आई थीं कैसे गुस्सा होना होगा और तब कैसी बातें कहनी होंगी, लिहाजा कुछ सोचना न पड़ा, बोलीं, "तो कल ही मुझे काशी भेज दे। मैं यहाँ एक छिन भी नहीं रहना चाहती।"

सत्येन्द्र अब वह सत्येन्द्रने नहीं रहा। सरलाके आदरका धन, खेलकी चीज, शौककी वस्तु,—अन्यमनस्क, उच्चमना, सरल-हृदय प्रफुल्ल-मुख पति, नलिनीका अनेक जतन और अनेक क्लेशसे मनका-सा बना हुआ सत्येन्द्रनाथ

अब नहीं रहा। उसने भी छातीपर पत्थर रख लिया है, लज्जा-शरम और हिताहित-ज्ञान सब कुछ उसने गँवा दिया है। उसने अनायास ही कहा, "तुम्हारी जहाँ तबीयत हो, चली जाओ। मैं अब किसीको भी नहीं ला सकता।"

इसका माँको स्वप्नमें भी खयाल न था कि सत्येन्द्रके मुँहसे ऐसी बात सुननी पड़ेगी। वे रोती हुई चली गईं। जाते समय कहती गईं, "बहू मेरी कुलटा नहीं है, सो अच्छी तरह जान रखना। गाँवके लोग चाहे जो कहा करें, पर मैं उस बातपर हरगिज विश्वास न करूँगी।"

दूसरे दिन बुआजीने सत्येन्द्रको बुलाकर कहा, "तुम्हारे एक मित्रने तुम्हारे लिए सौगात भेजी है, देखी है?"

"सत्येन्द्रने गरदन हिलाई, बोला, "नहीं तो, किस मित्रने?"

"मालूम नहीं। बैठो, कपड़े सब ले आऊँ!"

थोड़ी देर बाद बुआजी एक बंडल कपड़े ले आईं। सत्येन्द्रने देखा कि बहुत कीमती कपड़े हैं। वह आश्चर्य-चकित हो गया। किस मित्रने भेजे हैं? बनारसी साड़ी अच्छी तरह देखते देखते उसने गौर किया कि उसके एक छोरमें कुछ बँधा हुआ है। खोलकर देखा, एक छोटी-सी चिट्ठी है।

हस्ताक्षर देखकर सत्येन्द्रके माथेपर छौंकन-सा लग गया!

उसमें लिखा है—

"बहिन, स्नेहका उपहार वापस न करना चाहिए। तुम्हारी जीजीने जो भेजा है, उसे स्वीकार करना।"

* * * *

उस सुहाग-रातकी पुष्प-शय्या सत्येन्द्रके लिए कंटक-शय्या हो गई।

९—नरेन्द्र बाबूका पत्र

युवकका अभिमान किसी बालकमें देखा है क्या? सत्येन्द्रकी तरह अभिमान करके इतना बड़ा अनर्थ करते हुए किसी बालकको देखा है क्या? बचपनमें पुस्तक लेकर खेल किया करता था, तब पिताने उसकी सजा दी है और मैंने भोगी है। सत्येन्द्रनाथ! तुमने हृदयको लेकर खेल किया है, क्या उसकी सजासे डरते हो?

तुम लोग युवक हो। सारा संसार ही तुम्हारे लिए सुखका निकेतन है। मगर यह तो बताओ, तुममेंसे किसीके क्या ऐसा समय नहीं आया जब प्राण

वास्तवमें भार-रूप मालूम हुए हैं ? जब जीवनकी प्रत्येक ग्रन्थि शिथिल होकर क्लान्तभावसे ढल पड़नेको तैयार हो ? अगर न मौका मिला हो, तो एक बार सत्येन्द्रनाथको देखो। घृणा करनेकी तबीयत हो, स्वच्छन्दता-पूर्वक घृणा करो। घृणा करो, सहानुभूति न दिखाना ! घृणा करो, कुछ कहेगा नहीं; दया न करना,—मर जायगा !

पापी अगर मर जाय, तो प्रायश्चित्त कौन भोगेगा ? सत्येन्द्रके श्रान्त जीवनका प्रत्येक दिन एक एक दुःसह बोझ ले आता है; दिन-भर छटपटाते हुए भी वह उस बोझको उतार नहीं सकता !

सत्येन्द्रको बीच-बीचमें मालूम होता है मानो वह अपने अतीत जीवनको भूल गया है, भूला नहीं है तो सिर्फ इतना ही, 'उसकी प्यारी नलिनी पबनामें चरित्रहीन हुई थी, इसीसे वह अपने पतिके द्वारा त्याग दी गई है।'

सत्येन्द्रके ब्याहको लगभग दो महीने बीत चुके हैं। आज सत्येन्द्रको एक पत्र और छोटा-सा पार्सल मिला है।

पत्र नलिनीके भाई नरेन्द्र बाबूका है, और इस प्रकार है:—

" सत्येन बाबू,

अत्यन्त अनिच्छा होते हुए भी जो मैं आपको पत्र लिख रहा हूँ, सो सिर्फ अपनी प्राणाधिका बहिन नलिनीके कारण। मृत्युके पहले वह बहुत बहुत कह गई है,—यह अँगूठी आपके पास फिरसे भेज दी जाय। आपके नामकी अँगूठी वापस भेज रहा हूँ। मेरी बहिनकी इच्छा थी, इस अँगूठीको आप अपनी नई पत्नीको पहिना दें। आशा है, उसकी वह आशा पूरी होगी। और मरनेके पहले वह आपसे विशेष अनुनय करके कह गई है कि उसकी यह छोटी बहिन कष्ट न पावे।

—श्रीनरेन्द्रनाथ। "

नलिनीके जब एक पुत्र-संतान होकर मर गई थी, सत्येन्द्रने यह अँगूठी उसे पहिना दी थी। यह बात सत्येन्द्रको याद आई थी क्या ?

* * * *

सत्येन्द्रनाथ अब पबना नहीं रहते। किसी बी कारणसे हो, माता भी काशीवास न कर सकीं। नई बहूका नाम है विधु। विधु शायद पहले जनममें नलिनीकी बहिन थी।

मन्दिर

१

एक गाँवमें नदीके किनारे कुम्हारोंके दो घर थे। उनका काम था नदीमेंसे मिट्टी उठाकर साँचेमें ढालकर खिलौने बनाना और हाटमें ले जाकर उन्हें बेच आना। हमेशासे उनके यहाँ यही काम होता आया है, और इसीसे उनके ओढ़ने पहरने खाने पीने आदिकी गुजर होती रही है। औरतें भी काम करती हैं; पानी भरती हैं, रसोई बनाकर पति-पुत्र आदिको खिलाती हैं, और आवाँ ठंडा होनेपर उसमेंसे पके खिलौने निकाल निकाल कर उन्हें आँचलसे झाड़-पोंछकर चित्रित करनेके लिए मरदोंके हाथके आगे रख दिया करती हैं।

शक्तिनाथने इन्हीं कुम्हार-परिवारोंके बीच आकर अपने लिए एक स्थान बना लिया था। यह रोगक्लिष्ट ब्राह्मणकुमार अपने बन्धु-बान्धव, खेल कूद, पढ़ना लिखना,—सब-कुछ छोड़-छाड़कर एक दिन सहसा इन मिट्टीके खिलौनोंपर झुक पड़ा। वह खपचीकी छुरी धो देता, साँचेके भीतरसे मिट्टी साफ कर देता, और उत्कंठित और असन्तुष्ट चित्तसे देखता रहता कि खिलौनोंका चित्रांकन कैसी असावधानीसे हुआ करता है। स्याहीसे खिलौनोंकी भौंहें, आँखें, ओठ आदि अंकित कर दिये जाते थे; किसीकी भौंहें मोटी हो जातीं तो किसीकी आधी ही बनतीं, किसीके ओठके नीचे स्याहीका दाग लग जाता तो किसीके कुछ। शक्तिनाथ अधीर उत्सुकताके साथ प्रार्थना करता, “ सरकार भइया, ऐसी लापरवाहीसे क्यों रंग रहे हो ? ” सरकार भइया, यानी कारीगर, स्नेहके साथ हँसता हुआ जवाब देता, “ महाराजजी, अच्छी तरह रँगनेसे पैसे लगते हैं, उतना देता कौन है, बोलो ? एक पैसेका खिलौना चार पैसेमें तो नहीं न बिकेगा ? ”

* * * *

२

इस सहज बातकी काफी आलोचना करनेपर भी शक्तिनाथ सिर्फ आधी ही बात समझ सका। एक पैसेका खिलौना ठीक एक ही पैसेमें बिकेगा चाहे उसकी भौंहें हों, या आधी ही हों! दोनों आँखें समान, असमान, चाहे जैसी हों, वही एक पैसा! फिजूल कौन इतनी मेहनत करे? खिलौने खरीदेंगे लड़के;—दो घड़ी उससे प्यार करेंगे, सुलायेंगे, बैठायेंगे, गोदमें लेंगे,—उसके बाद तोड़-फोड़कर फेंक देंगे,—बस यही तो!

शक्तिनाथ घरसे सवेरे जो मूड़ी-मुड़की* धोतीमें बाँध लाया था, उसका कुछ हिस्सा अब भी बँधा हुआ है। उसीको खोलकर बहुत ही अनमना-सा होकर चबाते चबाते और बखेरते बखेरते वह अपने टूटे-फूटे मकानके आँगनमें आ खड़ा हुआ। घरमें कोई नहीं था। भग्न-स्वास्थ्य वृद्ध पिता जमींदारके यहाँ मदनमोहन भगवानकी पूजा करने गये थे। वहाँसे वे भींजे अरवा चावल, केले, मूली आदि चढ़ाया हुआ नैवेद्य बाँध लायेंगे, उसके बाद राँधकर पुत्रको खिलायेंगे। घरका आँगन कुन्द, करवी और हरसिंगारके पेड़ोंसे भरा हुआ है। गृहलक्ष्मी-हीन मकानमें चारों तरफ जंगल दिखाई देता है; किसी तरहका सिलसिला नहीं, किसी चीजमें सजावट नहीं। वृद्ध भट्टाचार्य मधुसूदन किसी तरह दिन काटते हैं। शक्तिनाथ फूल तोड़ता, डालें हिलाता और पत्तियाँ नोंचता हुआ सारे आँगनमें अन्यमनस्क भावसे घूमने-फिरने लगा।

रोज सवेरे शक्तिनाथ कुम्हारोंके घर जाया करता है। आजकल उसे खिलौनोंपर रंग चढ़ानेका अधिकार मिल गया है। उसका सरकार-भइया बड़े जतनके साथ सबसे अच्छा खिलौना छाँटके उसके हाथमें देता और कहता, 'लो महाराजजी, इसे तुम रँगो।' महाराजजी दोपहर तक उसी एक खिलौनेको रँगते रहते। शायद खूब ही अच्छा रँगा जाता; फिर भी एक पैसेसे ज्यादा कोई नहीं देता। परन्तु सरकार-भइया घर आकर कहता, "महाराजजीका रँगा हुआ खिलौना दो पैसेमें बिका!"—सुनकर शक्तिनाथ मारे खुशीके फूला नहीं समाता।

---

* मूड़ी=भुँजे हुए नमकीन चावल। मुड़की=गुड़ और शक्करमें पगी हुई खीलें।

३

इस गाँवके जमींदार कायस्थ हैं। देव-द्विजपर उनकी भक्ति बहुत ही बढ़ी-चढ़ी है। गृह-देवता मदनमोहनकी प्रतिमा कसौटीकी है; पास ही सुवर्णरंजित श्रीराधा हैं,—अतिशय ऊँचे मन्दिरमें रौप्य-सिंहासनपर उन्हींके द्वारा प्रतिष्ठित। वृन्दावन-लीलाके कितने ही अपूर्व सुन्दर चित्र दीवारोंपर सुशोभित हैं। ऊपर कीनखाबका चँदोवा है जिसके बीचमें सैकड़ों शाखावाला झाड़ लटक रहा है। एक तरफ संगमरमरकी वेदीपर पूजाकी सामग्री सजी हुई है, और नित्य-निवेदित पुष्प-चन्दनके घन-सौरभसे मन्दिर-भर सुरभित हो रहा है। शायद स्वर्ग-सुख और सौन्दर्यकी याद दिलानेके लिए ये पुष्प और यह सुगन्ध पूजाका प्रथम उपचार बने हुए हैं, और उसीकी सुकोमल सुरभिने वायुके स्तर स्तरमें संचित होकर इस मन्दिरकी वायुको निविड़ बना रक्खा है।

*　　　*　　　*　　　*

४

बहुत दिनोंकी बात कह रहा हूँ। जमींदार राजनारायण बाबूने जब प्रौढ़ताकी सीमामें पाँव रखते ही पहले पहल समझा कि इस जीवनकी छाया क्रमशः दीर्घ और अस्पष्ट होती आ रही है, जिस दिन सवेरे पहले पहल समझा कि इस जमींदारी और धन-ऐश्वर्यके भोगकी मियाद प्रतिदिन घटती ही जा रही है, पहले पहल जिस दिन मन्दिरके एक ओर खड़े खड़े उन्होंने आँखोंसे अनुतापके आँसू बहाये,—मैं उसी दिनकी बात कह रहा हूँ। तब उनकी एकमात्र सन्तान कन्या अपर्णा पाँच वर्षकी बालिका थी। पिताके पैरोंके पास खड़ी होकर वह एकाग्र चित्तसे देखा करती, मधुसूदन भट्टाचार्य मन्दिरके उस काले खिलौनेको चन्दनसे चर्चित कर रहे हैं, फूलोंसे सिंहासन वेष्टित कर रहे हैं। और उसकी स्निग्ध-सुगन्ध आशीर्वादकी भाँति मानो उसे स्पर्श करती फिरती है। उसी दिनसे प्रतिदिन वह बालिका सन्ध्याके बाद अपने पिताके साथ देवताकी आरती देखने आया करती और मंगलोत्सवके बीचमें वह अकारण ही विभोर होकर देखती रह जाती।

धीरे धीरे अपर्णा बड़ी होने लगी। हिन्दू घरानेकी लड़की जिस तरह ईश्वरकी धारणा हृदयंगम किया करती है, वह भी वैसे ही करने लगी। इस मन्दिरको पिताकी अत्यन्त आदरकी सामग्री जानकर उसे वह अपने ही

हृदय-शोणितके समान समझने लगी, और अपने प्रत्येक काम और खेल-कूदमें यही बात प्रमाणित करने लगी। दिन-भर उसी मन्दिरके आसपास बनी रहती, और एक भी सूखी घासका तिनका या सूखा फूल मन्दिरके भीतर पड़ा रहने देना उसे सहन नहीं होता। एक बूँद कहीं पानी गिर गया तो उसे वह अपने आँचलसे पोंछ देती। राजनारायण बाबूकी देव-निष्ठाको लोग ज्यादती समझते थे, परन्तु अपर्णाकी देव सेवा परायणता उस सीमाको भी अतिक्रम करने लगी। पुराने पुष्पपात्रमें अब फूल नहीं समाते,—दूसरा एक बड़ा मँगाया गया है। चन्दनकी पुरानी कटोरी बदल दी गई है। भोज्य और नैवेद्यका परिणाम पहलेसे बहुत बढ़ गया है। यहाँ तक कि नित्य नूतन नाना प्रकारकी पूजाका आयोजन और उसकी निर्दोष व्यवस्थाके झंझटमें पड़कर वृद्ध पुरोहित तक घबरा उठे हैं। जमींदार राजनारायण बाबू यह सब देख-सुनकर भक्ति और स्नेहसे गद्गद कण्ठसे कहते, "देवताने मेरे घर स्वयं अपनी सेवाके लिए लक्ष्मीको भेज दिया है,—तुम लोग कोई कुछ बोलो मत।"

* * * *

५

यथासमय अपर्णाका विवाह हो गया। इस आशंकासे कि मन्दिर छोड़कर अब उसे अन्यत्र कहीं जाना पड़ेगा, उसके चेहरेकी हँसी असमयमें ही सूख गई। दिन सुधवाया जा रहा है, उसे ससुराल जाना होगा। भरपूर बिजली छातीमें दबाये वर्षाके घने काले बादल जैसे अवरुद्ध गौरवके गुरुभारसे स्थिर होकर कुछ देरतक आकाशमें वर्षणोन्मुख होकर खड़े रहते हैं। उसी तरह स्थिर होकर अपर्णाने एक दिन सुना कि वह सुधवाया हुआ दिन आज आ गया है। उसने पिताके पास जाकर कहा, "बाबूजी, मैं भगवानकी सेवाका जो बन्दोबस्त किये जाती हूँ, उसमें किसी तरहका फर्क न आने पावे।"

वृद्ध पिता रो पड़े, बोले, "सो तो, बिटिया!–नहीं, कोई फर्क नहीं आयेगा।"

अपर्णा चुपचाप चली आई। उसके माँ नहीं है, वह रो नहीं सकी वृद्ध पिताकी दोनों आँखोंमें आँसू भरे हैं,—वह गुस्सा कैसे हो सकती है? इसके बाद, योद्धा जिस तरह अपने व्यथित क्रन्दनोन्मुख वीर-हृदयको पौरुष-शुष्क हँसीसे ढँककर झटपट घोड़ेपर सवार होकर चल देता है, उसी तरह अपर्णा पालकीमें चढ़के गाँव छोड़कर अनजाने कर्तव्यके शासनको सिर माथे रखकर

चली गई। अपने उच्छ्वसित आँसू पोंछते हुए उसे याद आया कि पिताके आँसू तो पोंछ ही नहीं आई। उसका हृदय रो-रोकर लगातार न जाने कितनी शिकायतें करने लगा। एक तो वैसे ही उसका हृदय सैकड़ों व्यथाओंसे व्यथित था, उसपर न जाने कहाँ किस ग्रामान्तरके मन्दिरमें जब संध्याके शंख-घंटा बज उठे, तो वह आजन्म परिचित आरतीका आह्वान शब्द उसके कानोंके भीतरसे मर्म तक नैराश्यका हाहाकार पहुँचाने लगा। छटपटाकर अपर्णाने पालकीका द्वार खोल डाला; वह संध्याके अन्धकारमेंसे देखने लगी और छाया-निविड़ ऊँची एक एक देवदारुकी चोटीपर एक परिचित मन्दिरके समुन्नत शिखरकी कल्पना करके वह उच्छ्वसित आवेगसे रो उठी। ससुरालकी एक दासी उसके पीछे ही चली आ रही थी, उसने झटपट पास आकर कहा, "छि बहूजी, इस तरह क्या रोना चाहिए? ससुराल कौन नहीं जाता?"

अपर्णाने दोनों हाथोंसे मुँह ढककर रोना बन्द करके पालकीके किवाड़ बन्द कर लिए।

ठीक इसी समय मन्दिर भीतर खड़े होकर पिता राजनारायण मदनमोहन भगवानके सामने धूपके धूम्र और अश्रुओंसे अस्पष्ट एक देवीमूर्तिके अनिन्द्य-सुन्दर मुखपर प्रियतमा दुहिताकी मुखच्छवि देख रहे थे।

* * * *

६

अपर्णा पतिके घर रहती है। वहाँ उसके इच्छाहीन पति-सम्भाषणमें जरा भी आवेग और जरा-सा चांचल्य तक प्रकट न हुआ। प्रथम प्रणयका स्निग्ध संकोच और मिलनकी सलज्ज उत्तेजना,—कोई भी उसके म्लान चक्षुओंकी पूर्व दीप्ति वापस न ला सकी। प्रारम्भसे ही स्वामी और स्त्री दोनों ही जैसे परस्पर एक दूसरेके सामने किसी दुर्बोध अपराधके अपराधी बने रहे; और उसीकी क्षुब्ध वेदना कूलप्लाविनी उच्छ्वसिता तटिनीकी भाँति एक दुर्लंघ्य व्यवधान खड़ा करके बहती चली जाने लगी।

एक दिन बहुत रात बीते अमरनाथने धीरेसे पुकारकर कहा, "अपर्णा, तुम्हें यहाँ रहना अच्छा नहीं लगता?"

अपर्णा जाग रही थी, बोली, "नहीं।"

अमर—मायके जाओगी ?

अपर्णा—जाऊँगी।

अमर—कल जाना चाहती हो ?

अपर्णा—हाँ, जाना चाहती हूँ।

क्षुब्ध अमरनाथ जवाब सुनकर अवाक् रह गया। कुछ देर चुप रहकर बोला—और अगर जाना न हो सके ?

अपर्णाने कहा—तो जैसे हूँ वैसे ही रहूँगी।

फिर कुछ देर दोनों ही चुप रहे। अमरनाथने बुलाया—अपर्णा !

अपर्णाने अन्यमनस्क भावसे कहा—क्या है ?

" मेरी क्या तुम्हें कोई जरूरत ही नहीं ? "

अपर्णाने कपड़ेसे सर्वाङ्ग अच्छी तरह ढँककर आरामसे सोते हुए कहा, " इन सब बातोंसे बड़ा झगड़ा होता है, ये सब बातें मत करो। "

" झगड़ा होता है,—कैसे जाना ? "

" जानती हूँ, मेरे मायकेमें मँझले भइया और मँझली भाभीमें इसी बातपर रोज खटक जाया करती है। मुझे कलह-लड़ाई अच्छी नहीं लगती। "

सुनकर अमरनाथ उत्तेजित हो उठा। अँधेरेमें टटोलता हुआ मानो वह इसी बातको अब तक ढूँढ़ रहा था, सहसा आज मानो वह हाथमें आ लगी; कहने लगा, " आओ अपर्णा, हम भी झगड़ा करें ! इस तरह रहनेकी अपेक्षा तो तो लड़ाई-झगड़ा लाख गुना अच्छा। "

अपर्णाने स्थिर भावसे कहा, "छिः झगड़ा क्यों करने चलें ? तुम सो जाओ !"

उसके बाद इस बातको कि अपर्णा सोई या जागती रही, अमरनाथ सारी रात जागते हुए भी न समझ सका।

भोरसे लेकर शामतक अपर्णाका सारा दिन काम-काज और जप-तपमें ही बीत जाता है। यह देखकर कि रस-रंग और हास्य-कौतुकमें वह जरा भी प्रवेश नहीं करती, उसकी बराबरीकी मजाकमें उसे न जाने क्या क्या कहती रहतीं, ननदें उसे 'गुँसाईंजी' कहकर हँसी उड़ातीं, फिर भी वह उनके दलमें मिल-जुल न सकी; बार बार यही सोचने लगी कि दिन व्यर्थ ही बीते जा रहे हैं। और यह जो अलक्ष्य आकर्षणसे उसका प्रत्येक शोणित-बिन्दु उस पितृप्रतिष्ठित मन्दिरकी ओर भाग जानेके लिए पूर्णिमाके उद्वेलित सिन्धु-वारिकी तरह हृदयके कूल-उपकूलपर दिन-रात पछाड़ें खा रहा है, उसको

कैसे रोका जाय ? घर-गिरस्तीके कामसे या छोटे-मोटे हास्य-परिहाससे ? उसका क्षुब्ध अस्वस्थ चित्त, जो एक भारी भ्रान्तिको सिरपर लादे हुए आप ही आप चक्कर खाकर मर रहा है, उसके पास तक पतिका लाड़-प्यार और स्नेह, परिजन-वर्गका प्रीति-सम्भाषण कैसे पहुँचे ? किस तरह वह समझे कि कुमारीकी देव-सेवाके द्वारा नारीत्वके कर्तृत्वका सारा परिसर परिपूर्ण नहीं किया जा सकता ?

* * * *

७

अमरनाथके समझनेकी भूल है,—वह उपहार लेकर स्त्रीके पास आया है। दिनके करीब नौ-दस बजे होंगे। नहानेके बाद अपर्णा पूजा करने जा रही थी जहाँतक हो सका, गलेका स्वर मधुर करके अमरनाथने कहा, "अपर्णा, तुम्हारे लिए कुछ उपहार लाया हूँ, दया करके लोगी क्या ?"

अपर्णाने मुसकराते हुए कहा, "लूँगी क्यों नहीं !"

अमरनाथके हाथमें चाँद आ गया। वह आनन्दके साथ, शौकीनी-रूमालमें बँधे हुए एक सूफियाने बाक्सका ढक्कन खोलने बैठ गया। ढक्कनके ऊपर सुनहरे अक्षरोंमें अपर्णाका नाम लिखा हुआ है। अब उसने अपर्णाका चेहरा देखनेके लिए एक बार उसके मुँहकी तरफ देखा; परंतु देखा कि आदमी काँचकी बनी नकली आँख लगाकर जैसे देखता है, उसी तरह अपर्णा उसकी तरफ देख रही है ! यह देखकर उसके सारे उत्साहने एक निमेषमें बुझकर मानो अर्थहीन एक बूँद सूखी हँसीमें अपनेको छिपाना चाहा। शरमके मारे गड़ जानेपर भी उसने बाक्सका ढक्कन खोलकर कुन्तलीन आदिकी कई एक शीशियाँ और न जाने क्या क्या निकालना शुरू किया, परंतु अपर्णाने बाधा देते हुए कहा, "यही सब क्या मेरे लिये लाये हो ?"

अमरनाथके बदले गोया और किसीने जवाब दिया, "हाँ, तुम्हारे ही लिए लाया हूँ। दिलखुशकी शीशियाँ—"

अपर्णाने पूछा, "बाक्स भी मुझे दे दिया क्या ?"

"जरूर।"

"तो फिर क्यों योंही सब बाहर निकाल रहे हो ? बाक्समें ही रहने दो सब।"

"अच्छा रहने दो। तुम लगाओगी न ?"

अकस्मात् अपर्णाकी भौंहें सिकुड़ गईं। सारी दुनियासे लड़ाई करके

६

उसका क्षत-विक्षत हृदय परास्त होकर वैराग्य-ग्रहण-पूर्वक चुपचाप एकान्तमें जा बैठा था, सहसा उसपर इस स्नेहके अनुरोधने कुत्सित उपहासका आघात किया; चंचल होकर उसने उसी वक्त प्रतिघात किया; कहा, "नष्ट नहीं होगा, रख दो। मेरे सिवा और बहुत लोग इस्तेमाल करना जानते हैं।" इतना कहकर, उत्तरके लिए जरा भी प्रतीक्षा किये विना, अपर्णा पूजाके घरमें चली गई और अमरनाथ विह्वलकी तरह उस अस्वीकृत उपहारपर हाथ रखे हुए उसी तरह बैठा रहा। पहले उसने मन ही हजार बार अपनेको निर्बोध कहकर तिरस्कृत किया। फिर, बहुत देर बाद उसने एक गहरी साँस भरकर कहा, 'अपर्णा, तुम पाषाणी हो!' उसकी आँखोंमें आँसू भर आये, —वह वहीं बैठा बैठा बराबर आँखें पोंछने लगा। अपर्णा यदि स्पष्ट भाषामें अस्वीकार करती तो बात कुछ और ही तरहका असर लाती। वह जो अस्वीकार विना किये भी अस्वीकारकी पूरी जलन उसकी देहपर पोत गई है, उसका प्रतीकार वह कैसे करे? क्या वह अपर्णाको उसके पूजाके आसनसे खींच लाकर उसीके सामने उसके उपेक्षित उपहारको खुद ही लात मारकर तोड़-फोड़ डाले और सबके सामने भीषण प्रतिज्ञा करे कि अब वह उसका मुँह न देखेगा? वह क्या करे, कितना और क्या कहे, कहाँ लापता होकर चला जाय? क्या भस्म रमाकर साधु-संन्यासी हो जाय और कभी अपर्णाके दुर्दिनोंमें अकस्मात् कहींसे आकर उसकी रक्षा करे! इस प्रकार सम्भव असम्भव न जाने कितने तरहके उत्तर-प्रत्युत्तर और वाद-प्रतिवाद उसके अपमान पीड़ित मस्तिष्कमें अधीरताके साथ उत्पन्न होने लगे। नतीजा यह हुआ कि वह उसी तरह बैठा रहा, और वैसे ही रोने लगा। परन्तु किसी भी तरह उसके इन शुरूसे अखीरतकके विशृंखल संकल्पोंकी लम्बी सूची पूरी न हो सकी।

* * * *

८

उसके बाद दो दिन और दो रातें बीत गईं, अमरनाथ घर सोने नहीं आया। माँको मालूम पड़नेपर उन्होंने बहूको बुलाकर थोड़ा-बहुत डाँटा फटकारा और पुत्रको बुलाकर समझाया-बुझाया। ददिया सास भी इस बीचमें जरा मजाक उड़ा गईं। इस तरह सात-पाँचमें बात हल्की पड़ गई। रातको अपर्णाने पतिसे क्षमाकी भिक्षा माँगी, कहा, "अगर मनमें कष्ट पहुँचा हो तो मुझे क्षमा करो।" अमरनाथ बात नहीं कर सका। पलंगके

एक किनारे बैठकर बिछौनेकी चादरको बार बार खींचकर उसे साफ करने लगा। सामने ही अपर्णा खड़ी थी, चेहरेपर उसके म्लान मुसकराहट थी; उसने फिर कहा, "क्षमा नहीं करोगे ?"

अमरनाथने सिर झुकाये हुए ही कहा, "क्षमा किस लिए ? और क्षमा करनेका मुझे अधिकार ही क्या है ?"

अपर्णाने पतिके दोनों हाथ अपने हाथमें लेकर कहा, "ऐसी बात मत कहो। तुम मेरे स्वामी हो, तुम नाराज रहोगे तो मेरी कैसे गुजर होगी ? तुम क्षमा न करोगे तो मैं खड़ी कहाँ हूँगी ? क्यों गुस्सा हो गये हो बताओ ?"

अमरनाथने आर्द्र होकर कहा, "गुस्सा तो नहीं हुआ।"

"नहीं हुए तो ?"

"नहीं।"

अपर्णाको कलह अच्छा नहीं लगता; इसलिए विश्वास न होते हुए भी उसने विश्वास कर लिया और कहा, "तो ठीक है।"

इसके बाद वह बिलकुल बेफिक्र होकर बिस्तरके एक तरफ सो रही।

परन्तु अमरनाथको इससे भारी आश्चर्य हुआ। दूसरी तरफ मुँह फेरकर बराबर वह मन ही मन यही तर्क-वितर्क करने लगा कि इस बातपर उसकी स्त्रीने विश्वास कैसे कर लिया। मैं जो दो दिन आया नहीं, मिला नहीं, फिर भी मैं गुस्सा नहीं हुआ,–यह क्या विश्वास करनेकी बात है ? इतनी बड़ी घटना इतनी जल्दी मिटकर व्यर्थ हो गई इसके बाद जब उसने समझा कि अपर्णा सचमुच ही सो गई है, तब वह एक बारगी उठकर बैठ गया और बिना किसी दुबिधाके जोरसे पुकार बैठा, "अपर्णा, तुम क्या सो रही हो ?—ओ अपर्णा !"

अपर्णा जाग गई, बोली, "बुला रहे हो ?"

"हाँ मैं कल कलकत्ते चला जाऊँगा।"

"कहाँ, यह बात तो पहले नहीं सुनी ! इतनी जल्दी तुम्हारे कालेजकी छुट्टी निबट गई ? और भी दो-चार दिन नहीं रह सकते ?"

"नहीं, अब रहना नहीं हो सकता।"

अपर्णाने जरा कुछ सोचकर फिर पूछा, "तब क्या तुम मेरे ऊपर गुस्सा होकर जा रहे हो ?"

बात सच थी, अमरनाथ भी जानता है, पर वह इस बातको मंजूर न कर सका। संकोचने आकर मानो उसकी धोतीका छोर पकड़कर उसे लौटा लिया।

आशंका हुई कि कहीं वह अपना निकम्मापन प्रमाणित करके अपर्णाके सम्मानकी हानि न कर बैठे;—इस तरह इस कुतूहल-विमुख नारीकी निश्चेष्टताने उसे अभिभूत कर डाला। पतित्वका जितना तेज उसने अपने स्वाभाविक अधिकारसे ग्रहण किया था, उस सबको अपर्णाने इन चार ही पाँच महीनोंमें धीरे धीरे खींचकर निकाल लिया है,—अब वह क्रोध प्रकट करे तो किस बिरतेपर? अपर्णाने फिर कहा, "नाराज होकर कहीं मत जाना। नहीं तो मेरे मनको बड़ी चोट पहुँचेगी।"

अमरनाथ झूठ और सच मिलाकर जितना बनाके कह सका, उसके मानी थे कि वह नाराज नहीं हुआ, और उसके प्रमाण-स्वरूप वह और भी दो दिन रहकर जायगा। रहा भी दो दिन। परन्तु रोकर विजयी होनेकी एक लज्जाजनक बेचैनी उसके मनमें बनी ही रही।

* * * *

९

एक साथ जोरकी वर्षा आ जानेमें एक भलाई है,—उससे आकाश निर्मल हो जाता है। परन्तु बूँदाबूँदीसे बादल तो साफ होते ही नहीं, उलटे पैरों-तले कीचड़ और चारों तरफ निरानन्दमय भाव बढ़ जाता है। अपने घरसे जो कीचड़ लपेटकर अमरनाथ कलकत्ते आया, धो डालनेके लिए इतनी बड़ी विराट् नगरीमें उसे जरा-सा पानी तक ढूँढ़े न मिला यहाँ उसके पूर्व-परिचित जितने भी सुख थे, उनके सामने अपने कीचड़से सने पैर निकालनेमें भी उसे शरम मालूम होने लगी। न तो पढ़ने-लिखनेमें उसका मन लगता, और न हँसने-खेलनेमें ही तबीयत जमती। यहाँ रहनेकी भी इच्छा नहीं होती और घर जानेको भी तबीयत करती। उसकी छातीपर मानो दुस्सह यंत्रणाका भार-सा लदा हुआ है, और, उसे ढकेल फेंकनेके लिए व्याकुल हृदयकी पसलियाँ आपसमें टकरा रही हैं। परन्तु सारी चेष्टाएँ व्यर्थ।

इसी तरह अन्तर्वेदनाको लिये हुए एक दिन वह बीमार पड़ गया। समाचार पाकर माता-पिता दौड़े आये, किन्तु अपर्णाको साथ नहीं लाये। यह बात नहीं थी कि अमरनाथने भी ठीक ऐसी ही आशा की हो, फिर भी उसका दिल बैठ गया। बीमारी उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगी। ऐसे समयमें स्वभावतः ही उसे अपर्णाको देखनेकी इच्छा होती, पर मुँह खोलकर उस बातको वह कह नहीं

सका। पिता माता भी समझ न सके। सिर्फ दवा, पथ्य और डाक्टर-वैद्य। अन्तमें उसने इन सबके हाथसे मुक्ति प्राप्त की,—एक दिन उसका देहान्त हो गया।

विधवा होकर अर्पणा सुन्न हो गई। सारे शरीरमें रोमांच हो आया और एक भयंकर सम्भावना उसके मनमें उदित हुई कि यह शायद उसीकी कामनाका फल है! शायद वह इतने दिनोंसे मन ही मन यही चाहती थी,—अन्तर्यामीने इतने दिनों बाद उसकी कामना पूरी की है! बाहरसे सुनाई दिया, उसके पिता बहुत जोर जोरसे रो रहे हैं। यह क्या स्वप्न है। वे कब आये? अपर्णाने जंगला खोला और झाँककर देखा, सचमुच ही राजनारायण बाबू बच्चोंकी तरह धूलमें लोटकर रो रहे हैं। पिताकी देखादेखी वह भी अब घरके भीतर लोट पड़ी और आँसुओंसे जमीन भिगोने लगी।

शाम होनेमें अब देर नहीं। पिताने आकर अपर्णाको छातीसे लगाते हुए कहा, " बिटिया! अपर्णा! "

अपर्णाने रोते रोते कहा, " बाबूजी। "

" तेरे मदनमोहनने तुझे बुलाया है बिटिया! "

" चलो बाबूजी वहीं चलें। "

" तेरा वहाँ सब काम पड़ा हुआ है बिटिया! "

" चलो बाबूजी, घर चलें। "

" चलो बिटिया, चलो। " कहते हुए पिताने स्नेहसे बिटियाका माथा चूमा, साथ ही सारा दुःख छातीसे पोंछकर मिटा दिया, और फिर लड़कीका हाथ पकड़कर दूसरे दिन उसे अपने घर ले आये। उँगलीसे दिखाते हुए बोले, " वह रहा बिटिया तेरा मन्दिर!—वे हैं तेरे मदनमोहन! "

निराभरणा अपर्णा वैधव्य-वेशमें कुछ और तरहकी दिखाई देती है। मानो सफेद वस्त्र और रूखे बालोंसे वह और भी अच्छी लगने लगी है। उसने पिताकी बातपर बहुत ज्यादा विश्वास किया, सोचने लगी, देवताके आह्वानसे ही वह लौट आई है। भगवानके मुँहपर मानो इसीलिए हँसी है, मन्दिरमें मानो इसीलिए सौ गुना सौरम है! उसे मालूम होने लगा, मानो वह इस पृथिवीसे बहुत ऊँची पहुँच गई है।

जो स्वामी अपने मरणसे उसे पृथिवीसे इतना ऊँचा रख गये हैं, उन मृत स्वामीको सौ बार प्रणाम करके अपर्णाने उनके लिए अक्षय स्वर्गकी कामना की।

* * * *

१०

शक्तिनाथ एकाग्र चित्तसे प्रतिमा बना रहा था। पूजा करनेकी अपेक्षा प्रतिमा बनाना उसे अधिक पसन्द था। कैसा रूप, कैसी नाक, कैसे कान और कैसी आँखें होनी चाहिए, कौन-सा रंग ज्यादा खिलेगा,—यही उसके आलोच्य विषय थे। किस चीजसे पूजा करनी चाहिए और किस मंत्रका जप करना चाहिए,—इन सब छोटे विषयोंपर उसका लक्ष्य नहीं था। देवताके सम्बन्धमें वह अपने आपको प्रमोशन देकर सेवकके स्थानसे पिताके स्थानपर चढ़ गया था। फिर भी पिताने उसे आदेश दिया, "शक्तिनाथ, आज मुझे बुखार ज्यादा है, जमींदारके घर तुम्हीं जाकर पूजा कर आओ।"

शक्तिनाथने कहा, "अभी प्रतिमा बना रहा हूँ।"

वृद्ध असमर्थ पिताने गुस्सेमें आकर कहा, "लड़कोंका खेल अभी रहने दो बेटा, पहले काम निबटा आओ।"

पूजाके मंत्र पढ़नेमें उसकी जरा भी तबीयत नहीं लगती, फिर भी, उठकर जाना पड़ा। पिताकी आज्ञासे स्नान करके, चद्दर और अंगोछा कंधेपर डालकर वह देव-मन्दिरमें आ खड़ा हुआ। इससे पहले भी वह कई बार इस मन्दिरमें पूजा करने आया है, परन्तु ऐसी अनोखी बात उसने कभी नहीं देखी। इतनी पुष्प-सुगन्धि, इतना धूप-सुगन्धका आडम्बर, भोज्य और नैवेद्यकी इतनी बहुलता! उसे बड़ी चिन्ता हुई, इतना सब लेकर वह करेगा क्या? किस तरह किस किसकी पूजा करेगा? सबसे ज्यादा आश्चर्य हुआ उसे अपर्णाको देखकर! यह कौन कहाँसे आई है? इतने दिनों तक कहाँ थी?

अपर्णाने कहा, "तुम भट्टाचार्यजीके लड़के हो?"

शक्तिनाथने कहा, "हाँ।"

"तो पाँव धोकर पूजा करने बैठो।"

पूजा करने बैठा तो शक्तिनाथ शुरूसे ही सब कुछ भूल गया, एक भी मंत्र उसे याद नहीं रहा। उधर उसका मन भी नहीं, विश्वास भी नहीं,—सिर्फ यही सोचने लगा: यह कौन है, क्यों इतना रूप है, किस लिए बैठी है, इत्यादि। पूजाकी पद्धतिमें उलट-फेर होने लगा।—विज्ञ परीक्षककी भाँति पीछे बैठी हुई अपर्णा सब समझ गई कि कभी घंटा बजाकर, कभी पुष्प डालकर, कभी नैवेद्यपर जल छिड़ककर यह अज्ञ पुरोहित सिर्फ पूजाका ढोंग कर रहा है।

हमेशासे देखते देखते इन सब बातोंको अपर्णा अच्छी तरह समझती थी, शक्तिनाथ भला उसे कैसे धोखा दे सकता था ? पूजा समाप्त होनेपर कठोर स्वरमें अपर्णाने कहा, " तुम ब्राह्मणके पुत्र हो, पूजा करना नहीं जानते ? "

शक्तिनाथने कहा, " जानता हूँ । "

" खाक जानते हो ! "

शक्तिनाथने विह्वलकी भाँति उसके मुँहकी तरफ देखा, फिर वह चलनेको तैयार हो गया । अपर्णाने उसे रोका, कहा, " महाराज, यह सब सामग्री बाँध ले जाओ,—पर कल फिर मत आना । तुम्हारे पिता अच्छे हो जायँ, तब वे ही आयेंगे । "

अपर्णाने स्वयं ही उसकी चद्दर और अंगौछेमें सब बाँधकर उसे विदा कर दिया । मन्दिरके बाहर आकर शक्तिनाथ बार बार काँप उठा ।

इधर अपर्णाने फिरसे नये सिरेसे पूजाका आयोजन करके दूसरे ब्राह्मणको बुलाकर पूजा सम्पन्न कराई ।

* * * *

११

एक मास बीत गया । आचार्य यदुनाथ जमींदार राजनारायण बाबूको समझाकर कह रहे हैं, " आप तो सब-कुछ समझते हैं, बड़े मन्दिरकी यह बृहत् पूजा मधु भट्टाचार्यके लड़केसे हरगिज नहीं हो सकती । "

राजनारायण बाबूने अनुमोदन करते हुए कहा, " बहुत दिन हुए, अपर्णाने भी ठीक यही बात कही थी । "

आचार्यने अपने मुखमंडलको और भी गंभीर बनाकर कहा, " सो तो कहा होगा ही । वे ठहरीं साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा ! उनके कुछ अगोचर थोड़े ही है । "

जमींदार बाबूका भी ठीक ऐसा ही विश्वास है । आचार्य कहने लगे, " पूजा चाहे मैं करूँ, या और कोई भी करे, अच्छा आदमी होना चाहिए ! मधु भट्टाचार्य जब तक जीवित थे, तब तक उन्हींने पूजा की है, अब उनके पुत्रको ही पुरोहिताई करना उचित है, परन्तु वह तो आदमी नहीं ! वह तो सिर्फ पट रँगने जानता है, खिलौने बना सकता है, पूजा-पाठ करना कुछ नहीं जानता । "

राजनारायण बाबूने अनुमति दे दी, " पूजा आप करें, पर अपर्णाको एक बार पूछ देखूँ । "

पिताके मुँहसे यह बात सुनकर अपर्णाने सिर हिलाया, बोली, " ऐसा भी

कहीं होता है ? ब्राह्मणका लड़का निराश्रय ठहरा, उसे कहाँ विदा कर दिया जाय ? जैसे जानता है, वैसे ही पूजा करेगा । भगवान् उसीसे सन्तुष्ट होंगे । ”

पुत्रीकी बात सुनकर पिताको चैतन्य हुआ । बोले, “ मैंने इतना सोच-समझकर नहीं देखा था । बेटी, तुम्हारा मन्दिर है, तुम्हारी ही पूजा है, तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो । जिसे चाहो, उसीको सौंप दो । ”

इतना कहकर पिता चले आये । अपर्णाने शक्तिनाथको बुलवाकर उसीको पूजाका भार सौंपा । फटकार खानेके बाद फिर वह इधर नहीं आया था । इस बीचमें उसके पिताकी मृत्यु हो गई, और अब वह स्वयं भी रुग्ण है । उसके सूखे चेहरेपर दुःखके शोक-चिह्न देखकर अपर्णाको दया आ गई, बोली, “ तुम पूजा करना,—जैसी जानते हो, वैसी ही करना । उसीसे भगवान् तृप्त होंगे । ”

ऐसा स्नेहका स्वर सुनकर उसको साहस आ गया । सावधान होकर मन लगाके वह पूजा करने बैठा । पूजा समाप्त होनेपर अपर्णाने अपने हाथसे वह जितना खा सकता था, उतना बाँधकर कहा, “ बहुत अच्छी पूजा की है । महाराज, तुम क्या अपने हाथसे राँधकर खाते हो ? ”

‘ किसी दिन बना लेता हूँ, किसी दिन,—जिस दिन बुखार आ जाता है, उस दिन नहीं बना सकता । ”

“ तुम्हारे क्या और कोई नहीं है ? ”

“ नहीं । ”

शक्तिनाथके चले जानेपर अपर्णाने उसके प्रति कहा, “ अहा, बेचारा ! ” इसके बाद देवताके समक्ष हाथ जोड़कर उसकी तरफसे प्रार्थना की, “भगवान् इसकी पूजासे तुम सन्तुष्ट होना; अभी लड़का ही है, इसका दोष-अपराध न लेना ।”

उसी दिनसे रोज अपर्णा दासीके ज़रिये खबर लेती रहती,—वह क्या खाता है, क्या करता है, उसे किस चीजकी जरूरत है । उस निराश्रय ब्राह्मणकुमारको उसने अज्ञात रूपसे आश्रय देकर उसका सारा भार स्वेच्छासे अपने ऊपर ले लिया ।—और उसी दिनसे इन दोनों किशोर और किशोरीने अपनी भक्ति, स्नेह और भूल-भ्रान्ति सबको एक करके, इस मन्दिरका आश्रय लेकर, जीवनके बाकी कामोंको अपनेसे अलग-पराया कर डाला । शक्तिनाथ पूजा करता है, अपर्णा बता दिया करती है । शक्तिनाथ स्तव पढ़ता है अपर्णा मन ही मन उसका सहज अर्थ देवताको समझा दिया करती है । शक्तिनाथ सुगन्ध-पुष्प हाथसे उठाता है, अपर्णा उँगलीसे दिखा-दिखाकर बताती जाती है,

"महाराज, आज इस तरह सिंहासन सजाओ तो देखें, बहुत अच्छा लगेगा।" इसी तरह इस बृहत् मन्दिरका वृहत् कार्य चलने लगा। देख-सुनकर आचार्यने कहा, " लड़कोंका खिलवाड़ हो रहा है!"

वृद्ध राजनारायणने कहा, " किसी भी तरह हो, लड़की अपनी अवस्थाको भूली रही तो अच्छा।"

* * * *

१२

थियेटरके स्टेजपर जैसे पहाड़ पर्वत, आँधी-मेह एक क्षणमें गायब होकर वहाँ एक विशाल राजप्रासाद कहींसे आ जुटता है, और लोगोंकी सुखसम्पदाके बीच दुःख दैन्यका चिह्नतक विलुप्त हो जाता है, शक्तिनाथके जीवनमें भी मानो वैसा ही हुआ है। पहले तो उसे मालूम ही नहीं हुआ कि वह जाग रहा था और अब सोकर सुख-स्वप्न देख रहा है, या निद्रामें दुःस्वप्न देख रहा था और अब सहसा जाग उठा है। फिर भी, उसके पहले वे विक्षिप्त खिलौने बीच-बीचमें उसे इस बातकी याद दिलाया करते हैं कि इस दायित्वहीन देव-सेवाकी सोनेकी साँकलने उसके सम्पूर्ण शरीरको जकड़कर बाँध लिया है और रह रह कर वह झनझना उठती है। वह अपने मृत पिताकी याद किया करता और अपनी स्वाधीनताकी बात सोचा करता। मालूम होता, मानों वह बिक गया है, अपर्णाने उसे खरीद लिया है। इस तरह अपर्णाके स्नेहने क्रमशः मोहकी भाँति धीरे धीरे उसे आच्छन्न कर डाला।

अकस्मात् एक दिन शक्तिनाथका ममेरा भाई वहाँ आ पहुँचा। उसकी बहिनका विवाह था। मामा कलकत्ते रहते हैं। अभी समय अच्छा है, लिहाजा सुखके दिनोंमें भानजेकी याद आई है। जाना होगा। यह बात शक्तिनाथको बहुत अच्छी लगी कि कलकत्ते जाना होगा। सारी रात वह भइयाके पास बैठा बैठा कलकत्तेके आरामकी कहानी, शोभाकी बातें, समृद्धिका वर्णन सुनता रहा और सुनते सुनते मुग्ध हो गया। दूसरे दिन मन्दिर जानेकी उसकी इच्छा नहीं हुई। सबेरा होते देख अपर्णाने उसे बुलाया। शक्तिनाथने जाकर कहा, " आज कलकत्ते जाऊँगा—मामाने बुलाया है।

इतना कहकर वह जरा संकुचित होकर खड़ा हो गया। अपर्णा कुछ देरतक चुप रही, फिर बोली, " कब वापस आ जाओगे?"

शक्तिनाथने डरते हुए कहा, " मामा कह देंगे, तभी चला जाऊँगा। "

अपर्णाने फिर कुछ नहीं पूछा। फिर वही यदुनाथ आचार्य आकर पूजा करने लगे। फिर उसी तरह अपर्णा पूजा देखने लगी, परन्तु कोई बात कहनेकी उसे जरूरत नहीं हुई, और इच्छा भी नहीं थी।

कलकत्ते आकर विविध वैचित्र्यमें आनन्दसे दिन बीतनेपर भी कुछ दिन बाद शक्तिनाथका मन घर जानेके लिए फड़फड़ाने लगा। लम्बे और आलसी दिन अब उससे बिताये नहीं बीतते। रातको वह स्वप्न देखने लगा, अपर्णा उसे बुला रही है, और जवाब न पाकर गुस्सा हो रही है! आखिर एक दिन उसने अपने मामासे कहा, " मैं घर जाऊँगा। "

मामाने मना किया, " वहाँ जंगलमें जाकर क्या करोगे? यहीं रहकर पढ़ो-लिखो, मैं तुम्हारी नौकरी लगा दूँगा। "

शक्तिनाथ सिर हिलाकर चुप हो गया। मामा कहा, " तो जाओ। "

बड़ी बहूने शक्तिनाथको बुलाकर कहा, " लालाजी, कल क्या घर चले जाओगे? "

शक्तिनाथने कहा, " हाँ, जाऊँगा। "

" अपर्णाके लिए मन फड़फड़ा रहा है, न? "

शक्तिनाथने कहा, " हाँ। "

" वह तुम्हारी खूब खातिर करती है, न? "

शक्तिनाथने सिर झुकाते हुए कहा, " खूब खातिर करती है। "

बड़ी बहू भीतर ही भीतर मुसकराई; अपर्णाकी बातें उसने पहले ही सुन ली थीं और खुद शक्तिनाथने ही कही थीं। बोली, " तो लालाजी, ये दो चीजें लेते जाओ; उसे दे देना, वह और भी प्यार करेगी। " इतना कहकर उसने एक शीशीका डॉट खोलकर थोड़ा-सा 'दिलखुश' सेण्ट उसकी देहपर छिड़क दिया। उसकी सुगन्धसे शक्तिनाथ पुलकित हो उठा और दोनों शीशियोंको चादरके छोरमें बाँधकर दूसरे ही दिन घर लौट आया।

* * * *

१३

शक्तिनाथने मन्दिरमें प्रवेश किया। पूजा समाप्त हो चुकी थी। चादरमें एसेन्सकी शीशियाँ बँधी हैं पर इन कई दिनोंमें अपर्णा उसके पाससे

इतनी ज्यादा दूर हट गई है देनेकी हिम्मत नहीं होती। वह मुँह खोलकर किसी तरह कह ही न सका कि तुम्हारे लिए बढ़ी साधसे कलकत्तेसे ये लाया हूँ। सुगन्धसे तुम्हारे देवता तृप्त होते हैं. तुम भी होगी। खैर, सात दिन इसी तरह बीत गये; रोज वह चादरमें शीशियाँ बाँधकर ले जाता, रोज वापस आता, और फिर उन्हें जतनसे दूसरे दिनके लिए उठाकर रख देता। पहलेकी तरह एक दिन भी अगर अपर्णा उसे बुलाकर कोई बात पूछती तो शायद वह अपना उपहार उसे दे डालता; परन्तु वैसा मौका फिर आया ही नहीं।

आज दो दिनसे उसे ज्वर आ रहा है, फिर भी डरते डरते वह पूजा करने आ जाता है। किसी अज्ञात आशंकासे वह अपनी पीड़ाकी बात भी न कह सका। परन्तु अपर्णाने पता लगा लिया कि दो दिनसे शक्तिनाथने कुछ खाया नहीं है, फिर भी पूजा करने आता है। अपर्णाने पूछा, "महाराज, तुमने दो दिनसे कुछ खाया नहीं ?"

शक्तिनाथने सूखे मुँहसे कहा, "रातको रोज बुखार आ जाता है।"

"बुखार आता है ? तो फिर नहा-धोकर पूजा करने क्यों आते हो ? तुमने कहा क्यों नहीं ?"

शक्तिनाथकी आँखोंमें पानी भर आया। क्षणभरमें वह सब बात भूल गया, और चद्दरकी गाँठ खोलकर दोनों शीशियाँ निकालकर बोला, "तुम्हारे लिए लाया हूँ।"

"मेरे लिए ?"

"हाँ, तुम सुगन्ध पसन्द करती हो न ?"

गरम दूध जैसे जरा-सी आगकी गरमी पाते ही बुलबुले देकर खौलने लगता है, अपर्णाके सारे शरीरका खून उसी तरह खौल उठा। शीशियाँ देखकर ही वह पहिचान गई थी। उसने गम्भीर स्वरमें कहा, 'दो—' और हाथमें लेकर मन्दिरके बाहर, जहाँ पूजाके चढ़े हुए फूल पड़े सूख रहे थे, दोनों शीशियाँ फेंक दीं ! मारे आतंकके शक्तिनाथकी छातीका खून जम गया ! कठोर स्वरमें अपर्णाने कहा, "महाराज, तुम्हारे भीतर ही भीतर इतना भरा है ! अब तुम मेरे सामने मत आना, मन्दिरकी छाया भी न मँझाना।" इसके बाद अपर्णाने अपनी चम्पक-अँगुलिसे बाहरका रास्ता दिखाकर कहा, "जाओ—"

* * * *

आज तीन दिन हुए शक्तिनाथको गये। यदुनाथ आचार्य फिर पूजा करने लगे, फिर ग्लान मुखसे अपर्णा पूजा देखने लगी,—यह मानो और किसीकी पूजा और कोई आकर समाप्त कर रहा है! पूजा समाप्त करके अँगौछेमें नैवेद्य बाँधते बाँधते आचार्य महाशयने गहरी साँस लेकर कहा, "लड़का विना इलाजके मर गया!"

आचार्यके मुँहकी तरफ देखकर अपर्णाने पूछा, "कौन मर गया?"

"तुमने नहीं सुना क्या? कई दिन ज्वरमें पड़े वही अपना मधु भट्टाचार्यका लड़का आज सवेरे मर गया।"

अपर्णा फिर भी उनके मुँहकी तरफ देखती रही। आचार्यने द्वारके बाहर आकर कहा, "आजकल पापके फलसे मृत्यु हो रही है,—देवताके साथ क्या दिल्लगी चल सकती है, बेटी!"

आचार्य चले गये। अपर्णा द्वार बन्द करके जमीनपर माथा पटक पटक कर रोने लगी और हजार बार रो रो कर पूछने लगी, "भगवान्, यह किसके पापसे?"

बहुत देर बाद वह उठकर बैठ गई और आँखें पोंछकर उन सूखे फूलोंके भीतरसे उस स्नेहके दानको उठाकर उसने सिरसे लगा लिया। फिर मन्दिरके भीतर प्रवेश करके उसे देवताके चरणोंके पास रखकर वह रोती हुई बोली, 'भगवान्, मैं जिसे नहीं ले सकी, उसे तुम ले लो। अपने हाथसे मैंने कभी पूजा नहीं की, आज कर रही हूँ,—तुम स्वीकार करो, तृप्त होओ, मेरे और कोई कामना नहीं है।"



मुक़द्दमेका नतीजा

वृद्ध वृन्दावन सामन्तके मरनेके बाद उसके दोनों लड़के शिबू और शम्भू सामन्त रोजमर्रा लड़ते-झगड़ते पाँच-छै महीने एक ही चौके और एक ही मकानमें बने रहे; और उसके बाद एक दिन दोनों न्यारे हो गये।

गाँवके जमींदार स्वयं चौधरी साहबने आकर दोनोंकी सम्मिलित खेती-बाड़ी-जमीन-जायदाद, बाग-तालाब, सबका बँटवारा कर दिया। पुराने घरको छोड़कर छोटा भाई शम्भू सामन्त, सामनेके तालाबके उधर मिट्टीका घर बनवाकर, छोटी बहू और बाल-बच्चोंके साथ उसमें रहने लगा।

सभी चीजोंका बँटवारा हो गया, सिर्फ एक छोटेसे बाँसके झाड़का हिस्सा न हो सका। कारण, शिबूने आपत्ति करते हुए कहा, "चौधरीजी; बाँसके झाड़की मुझे बहुत ही जरूरत है! घर बार सब पुराना हो गया है, छप्परको फिरसे बनवाना है, खूँटी-उँटीके लिए भी बाँस मुझे चाहिए ही। गाँवमें किससे माँगने जाऊँगा, बताइए?"

शम्भूने प्रतिवादके लिए उठकर बड़े भाईकी मुँहकी तरफ हाथ हिलाते हुए कहा, "अहा-हा, इन्हींकी खूँटी उँटीके लिए बाँसकी जरूरत होगी, और मेरे घरका काम केलेके पेड़से ही चल जायगा, क्यों? सो नहीं हो सकता, चौधरी साहब, बाँसके झाड़के बिना तो हाँ, मैं कहे देता हूँ मेरा भी काम चल नहीं सकता।"

मीमांसा यहीं तक होते होते रह गई। लिहाजा यह सम्पत्ति दोनोंकी शामिल बनी रही। फल यह हुआ कि शम्भू यदि उसकी एक टहनीपर भी हाथ लगाता तो शिबू-भइया गड़ासा लेकर दौड़ पड़ते और शिबूकी स्त्री कभी बाँसके पास पाँव रखती तो शम्भू लाठी लेकर मारने दौडता।

उस दिन सवेरे इसी बाँसके झाड़के पीछे दोनों परिवारोंमें बड़ा भारी दंगा हो गया। षष्ठी देवीकी पूजा या ऐसे ही किसी एक देव-कार्यके लिए बड़ी बहू गंगामणिको थोड़ेसे बाँसके पत्ते चाहिए थे। गँवई-गांवमें यह चीज कोई

दुर्लभ वस्तु नहीं थी, आसानीसे और कहींसे भी पत्ते लिये जासकते थे; परन्तु अपने यहाँ मौजूद रहते हुए दूसरेके सामने हाथ पसारनेमें उसे शरम मालूम हुई।-खास कर उसे इस बातका भरोसा था कि देवर अब तक जरूर खलिहान चला गया होगा, छोटी-बहू अकेली भला क्या कर सकती है।

मगर,मालूम नहीं किस वजहसे शम्भूको उस दिन खलिहान जानेमें देर हो गई थी। वह बासी भात खाकर हाथ-मुँह धोना ही चाहता था कि इतनेमें छोटी बहू तालाबके घाटसे गिरते-पड़ते भागी आई और उसने पतिसे सब हाल कह सुनाया। शम्भूके हाथका लोटा वहीं पड़ा रहा, हाथ मुँह धोना जहाँका तहाँ रहा, वह चिल्लाकर सारे मुहल्लेको जगाता हुआ तीन कुदानमें घटनास्थलपर जा पहुँचा और झूठे ही हाथोंसे उसने भौजाईके हाथसे बाँसके पत्ते छीनकर फेंक दिये; साथ ही भौजाईके प्रति ऐसे वाक्य कह डाले,जो और चाहे कहींसे भी सीखे हों, पर यह बिना किसी सन्देहके कहा जा सकता है कि रामायणके लक्ष्मणचरित्रमें हर्गिज नहीं सीखे।

इधर बड़ी बहू रोती रोती घर पहुँची और तुरंत ही खलिहानमें पतिके पास खबर भेज दी। शिबू हल छोड़कर हँसिया हाथमें लिये दौड़ा आया और बाँसके झाड़के पास खड़े होकर उसने अनुपस्थित छोटे भाइके लिए अस्त्र घुमाते हुए ऐसा शोर मचाना शुरू किया कि चारों तरफ़ आदमी इकट्ठे हो गये। इससे भी जब अरमान पूरा न हुआ, तो वह सीधा जमींदारके यहाँ नालिश करने पहुँचा और यह कहकर डरा गया कि चौधरी साहब इसका न्याय करें तो ठीक, नहीं तो वह सदर कचहरीमें जाकर एक नम्बरका मुकदमा चलायेगा, और तब कहीं उसका नाम शिबू सामन्त होगा!

ऊधर शम्भू बाँसके पत्ते छीननेका कर्तव्य पूरा करके तुरंत ही बैल लेकर हल जोतने चला गया। स्त्रीके मना करनेपर भी उसने सुना नहीं। घरमें छोटी बहू अकेली थी, इतनेमें जेठजीने आकर गरज कर मुहल्ला इकट्ठा कर लिया और वीर-दर्पके साथ इकतरफा विजय प्राप्त कर चले आये। छोटी बहू होनेसे वह सब-कुछ कानोंसे सुनकर भी कुछ जवाब न दे सकी। इससे उसके मनस्तापकी और पतिके विरुद्ध अप्रसन्नताकी सीमा न रही। उसने रसोईघरकी तरफ़ पाँव भी न रक्खा, मुँह उदास करके बरंडेमें पैर फैलाकर बैठ गई।

शिबूके घर भी यही दशा हुई। बड़ी बहू प्रतिज्ञा किये बैठी पतिकी बाट जोह रही है कि या तो इसका कुछ फैसला होना चाहिए, नहीं तो वह इस

घरमें पानी तक न पीयेगी और सीधी अपने मायकेको चल देगी। दो बाँसके पत्तोंके लिए देवरके हाथसे इतना अपमान !

डेढ़ पहर दिन चढ़ गया, अभी तक शिबूका कोई पता नहीं। बड़ी बहू छटपटा रही थी,—क्या जाने कहीं चौधरी साहबके मकानसे सीधे कचहरी तो नहीं चले गये मामला दाखिल करने !

इतनेमें जोरकी आहटके साथ बाहरका दरवाजा खुला और शम्भूके बड़े लड़के गयारामने प्रवेश किया। उसकी उमर सोलह-सत्रह सालकी या ऐसी ही कुछ होगी; मगर इस उमरमें भी उसका क्रोध और भाषा उसके बापको भी लाँघ गई थी। वह गाँवके ही माइनर स्कूलमें पढ़ता है। आजकल सबेरेका स्कूल ठहरा, साढ़े दस बजे ही स्कूलकी छुट्टी हो गई थी।

गयाराम जब साल-भरका था तभी उसकी मा मर गई थी। उसका बाप शम्भू दुबारा शादी करके नई बहू तो घर ले आया, पर इस माँ मरे बच्चेको पालनेका भार ताईपर ही आ पड़ा; और तबसे दोनों भाई जबतक अलग न हुए तब तक उसका भार वही सम्हालती आई है। विमाताके साथ कभी उसका कोई खास सम्बन्ध नहीं रहा,—यहाँ तक कि उनके न्यारे होकर नये मकानमें चले जानेपर भी जहाँ उसकी लाग लग जाती है वहीं वह खा-पी लिया करता है।

आज वह स्कूलसे घर गया तो सौतेली माँका मुँह और खानेका इन्तजाम देखकर हुताशनके समान प्रज्वलित हो उठा और इस घरमें आया। यहाँ ताईका मुँह देखकर उसकी उस आगमें पानी न पड़ा, बल्कि मिट्टीका तेल पड़ गया। उसने जरा भी भूमिका न बाँधकर कहा, "भात दे ताई।"

ताईने बात नहीं की, जैसे बैठी थी वैसे ही बैठी रही।

क्रुद्ध गयारामने जमीनपर पैर पटकते हुए कहा, "भात देगी, या नहीं देगी, सो बता !"

गंगामणिने सिर उठाकर मारे गुस्सेसे गरजकर कहा, "तेरे लिए भात राँधे बैठी जो हूँ न,—सो दे दूँ। तेरा सौतेली अम्मा अभागी भात न दे सकी, जो यहाँ आया है फसाद मचाने !"

गयारामने चिल्लाकर कहा, "उस अभागीकी बात मैं नहीं जानता। तू देगी कि नहीं, बता ! नहीं देगी तो जाता हूँ तेरी सब हाँड़िया-मटकियाँ तोड़ने। यह कहता हुआ वह भिसोरेके पास जाकर ईंधनके ढेरमेंसे एक लकड़ी उठाकर तेजीसे रसोईघरकी तरफ चल दिया।

ताई मारे डरके जोरसे चिल्ला उठी, "गया! हरामजादे डकैत! ज्यादा ऊधम किया तो समझ लेना हाँ! दो दिन भी नहीं हुए, मैंने नई हँड़ियाँ-मटकियाँ निकाली हैं, एक भी कोई टूट-फूट गई तो तेरे ताऊसे कहकर तेरी टाँग न तुड़वा दी तो कहना, हाँ!"

गयारामने रसोईघरकी साँकलपर हाथ रक्खा ही था कि सहसा एक नई बात उसे याद आ गई, और उसने अपेक्षाकृत शान्तभावमें आकर कहा, "अच्छा, भात नहीं देती तो मत दे, जा। मुझे नहीं चाहिए। नदी-किनारे बड़के नीचे बाम्हनोंकी लड़कियाँ सब भर भर टोकना चिउड़ा-मुड़की* ले जाकर पूजा कर रही हैं, जो माँगता है उसीको दे रही हैं, देख आया हूँ। वहीं जाता हूँ,—उन्हींके पास।"

गंगामणिको उसी वक्त याद आया कि आज अरण्य-षष्ठी है, और क्षण-भरमें उसका मिजाज 'कड़े' से 'कोमल' में उतर आया। फिर भी मुँहका जोर ज्योंका त्यों बनाये रखकर उसने कहा, "चला न जा। कैसे जाता है देखूँगी!"

"देखना, तब" कहकर गयाने एक फटा अँगौछा उठाकर कमरसे लपेट लिया। उसके जानेके लिए तैयार होते ही गंगामणिने उत्तेजित होकर कहा, "आज यदि छठके दिन दूसरोंके यहाँसे माँगकर खाया, तो तेरी क्या दुरगत करती हूँ देखना, अभागे!"

गयाने जवाब नहीं दिया। रसोईघरमें घुसकर वह हथेली-भर तेल लेकर सिरपर रगड़ता हुआ जा ही रहा था इतनेमें उसकी ताईने आँगनमें आकर डराते हुए कहा, "डाँकू कहींके! देवी-देवताके साथ गँवारपन! वहाँ डुबकी लगाकर लौट न आया तो अच्छा नहीं होगा, कहे देती हूँ। आज मैं वैसे ही गुस्सेमें हूँ।"

मगर गयाराम डरनेवाला लड़का ही नहीं। वह सिर्फ़ दाँत निकालकर ताईको ठेंगा दिखाकर भाग गया।

गंगामणि उसके पीछे पीछे सड़क तक दौड़ी आई और लगी चिल्लाने, "आज छठके दिन किसके लड़के भात खाते हैं, जो तू भात खाना चाहता है?

---

* मुड़की=धानकी खीलोंको गुड़की चासनीमें पागकर बनाई जाने-वाली एक मिठाई।

पटाली गुड़×के सन्देससे, केलेसे, दूध-दहीसे फल्हार नहीं कर सकता जो तू जा रहा है पराये घर माँगकर खाने ? केवटके घर तू ऐसा नवाब पैदा हुआ है ?"

गया कुछ दूर जाके मुँड़कर खड़ा हो गया, बोला, "तो तूने दिया क्यों नहीं मुँहजली ? क्यों कहा कि कुछ नहीं है ?"

गंगामणि गालपर हाथ रखकर दंग रह गई, बोली, "सुनो लड़केकी बातें ! मैंने कब कहा तुझसे कि कुछ नहीं है ? नहानेका ठिकाना नहीं, कुछ बात न चीत, डकैतकी तरह घरमें घुसा नहीं कि दे भात ! भात क्या आज खाया जाता है जो देती ? मैं कहती हूँ, सब कुछ मौजूद है, तू नहा तो आ।"

गयाने कहा, "फल्हार तेरा सड़ जाय। रोज रोज अभागिनें लड़ाई-झगड़ा करेंगी और रसोईघरकी साँकल चढ़ाकर पैर पसारकर बैठ जायँगी और रोज मैं दोपहर बाद सूखा भात खाऊँगा ? जाओ, मैं तुम लोगोंमेंसे किसीके यहाँ नहीं खाना चाहता, जाओ।" कहकर वह दनदनाता हुआ फिर जाने लगा। यह देखकर गंगामणि वहीं खड़ी खड़ी रोते-से स्वरमें चिल्लाने लगी, "आज छठके दिन किसीके यहाँ माँग-खाकर असगुन मत कर, गया,—राजा बेटा कैसा है मेरा,—अच्छा तो चार पैसे दूँगी,—सुन तो—"

गयारामने मुँह भी न फेरा, जल्दीसे चलता चला गया। चलते चलते कहता गया, "नहीं चाहिए मुझे फल्हार, नहीं चाहिए पैसा। तेरे फल्हारपर मैं—" इत्यादि इत्यादि।

उसके आँखोंके ओझल हो जानेपर गंगामणि घर लौट आई और मारे दुःख और गुस्सेके निर्जीवकी तरह बरंडेमें आकर बैठ गई और गयाके इस बुरे बर्तावसे मर्माहत होकर उसकी सौतेली माँको कोसने और गाली देने लगी।

उधर नदीकी ओर चलते चलते रास्तेमें ताईकी बातें गयाके कानमें गूँजने लगीं। एक तो अच्छे खानेकी तरफ स्वभावसे ही उसका लालच था; फिर पटालीगुड़के सन्देस, दूध-दही, केले,—उसपर चार पैसे दक्षिणा !—उसका मन बहुत ही जल्द नरम होने लगा।

नहा-धोकर गयाराम बड़ी जोरकी भूख लेकर घर लौटा। आँगनमें आकर चिल्लाया, "फल्हारका सामान जल्दी ले आ ताई, बड़ी जोरकी भूख लगी है मुझे। लेकिन पटाली-सन्देस कम देगी तो आज तुझे ही खा जाऊँगा।"

× एक तरहका गुड़ जो थालीमें जमाकर बनाया जाता है।

गंगामणि गायकी टहलके लिए ग्वाल-घरमें घुसी ही थी। गयाकी चिल्लाहट सुनकर उसने मन ही मन अपनी गल्ती समझ ली। घरमें दूध-दही-चिउड़ा-गुड़ तो था, पर केले न थे और न पटाली-गुड़के सन्देस ही थे। तब तो गयाको रोकनेके लिए उसे चाहे जैसा लोभ दे दिया, पर अब ?

उन्होंने वहींसे आवाज दी, "तब तक तू कपड़े तो बदल, मैं तालावसे हाथ धोकर आती हूँ।"

"जल्दी आ" हुक्म चलाकर गयाने कपड़े बदले, और वह स्वयं अपने हाथसे आसन बिछा, लोटेमें पानी रख, तैयार होकर बैठ गया। गंगामणि जल्दी जल्दी हाथ धोकर लौट आई और उसे खुशमिजाज देखकर प्रसन्न होकर बोली, "देख तो, कैसा राजा-बेटा हो गया। बात-बातपर गुस्सा करते हैं कहीं।" कहती हुई वह भंडारघरसे खानेका सामान निकाल लाई।

गयारामने लहमें-भरमें सब सामान देख लिया और तीखे स्वरमें पूछा, "केले कहाँ हैं ?"

गंगामणिने इधर उधर करके कहा, "ढाँकना भूल गई थी, बेटा, सब चूहे खा गये। अब एक बिल्ली पाले बिना काम नहीं चलेगा।"

गयाने हँसकर कहा, "चूहे कहीं केले खाते हैं ? तेरे यहाँ थे ही नहीं, कहती क्यों नहीं ?"

गंगामणिने अचम्भेके साथ कहा, "क्यों, क्या हुआ। क्या केले चूहे नहीं खाते ?"

गयाने दही-चिउड़ा मिलते हुए कहा, "अच्छा, खाते हैं, खाते हैं। मुझे केले नहीं चाहिए, पटाली-गुड़के सन्देस ले आ। कमती मत लाना, कहे देता हूँ।"

ताई फिर भंडारघरमें गई और कुछ देर तक झूठमूठको हँड़ियाँ-मटकियाँ हिला-डुलाकर डरके साथ बोल उठी, "हाय, सन्देस भी चूहे खा गये बेटा, रत्ती-भर भी नहीं छोड़े, जाने कब हँड़ियाका मुँह खुला छोड़ गई,—मेरी यादपर पत्थर—"

ताईका बात पूरी भी न होने दी, वह एकाएक त्योरियाँ चढ़ाकर चिल्ला उठा, "पटाली गुड़ कहीं चूहे खाते हैं डाइन,—मेरे साथ चालाकी ? तेरे पास कुछ था ही नहीं, तो तूने मुझे बुलाया क्यों ?"

ताईने बाहर आकर कहा, "सच्ची कहती हूँ गया—"

गया उछलकर खड़ा हो गया, बोला, "फिर भी कह रही है 'सच्ची !' जा,

मैं तेरा कुछ भी नहीं खाना चाहता" कहकर पाँवसे उसने सब सामान आँगनमें फेंक दिया, और कहा, "अच्छा, मैं मजा चखाता हूँ, देख न!" कहता हुआ वह ईंधनकी लकड़ी उठाकर भंडारघरकी तरफ लपका।

गंगामणि हैं हैं करती हुई उसके पास पहुँची लेकिन पल-भरमें क्रुद्ध गयारामने हँड़ियाँ-मटकियाँ सब तोड़-फोड़कर बराबर कर दीं और उसे रोकनेमें ताईके हाथमें थोड़ी-सी चोट भी आ गई।

ठीक इसी समय शिबू जमींदारके यहाँसे वापस आया। शोर-गुल सुनकर उसने चिल्लाकर पूछा कि क्या बात है? गंगामणि पतिकी आवाज़ सुनते ही रो उठी, और गयाराम हाथकी लकड़ी फेंककर सरपट भाग खड़ा हुआ।

शिबूने गुस्से-भरी आवाज़में पूछा, "बात क्या है?"

गंगामणिने रोते हुए कहा, "गया मेरा सरबस तोड़-फोड़कर, हाथमें लकड़ी मारकर भाग गया है,—यह देखो, हाथ सूज गया है।" कहकर उसने पतिको अपना हाथ दिखाया।

शिबूके पीछे उसका छोटा साला था। होशियार और पढ़ा-लिखा होनेसे जमींदारके यहाँ जाते वक्त शिबू उसे परले मुहल्लेसे बुलाकर अपने साथ ले गया था। उसने कहा, "सामन्त-साहब, वह सब छोटे सामन्तकी कारसाजी है। लड़केको भेजकर उसीने यह काम कराया है। क्यों जीजी, यही बात है न?"

गंगामणिका उस समय कलेजा जल रहा था, उसने उसी वक्त सिर हिलाकर कहा, "ठीक है भइया। उसी मुँहजलेने लड़केको सिखाकर मुझे मार दिलाई है। इसका कुछ होना जरूर चाहिए, नहीं तो मैं गलेमें रस्सी लगाकर मर जाऊँगी।"

इतनी अबेर हो चुकी थी, अब तक शिबूका नहाना-खाना कुछ भी नहीं हुआ था, जमींदारके यहाँसे भी ठीक न्याय नहीं हुआ; उसपर घरपर कदम रखते न रखते यह एक नया कांड! अब तो उसे हिताहितका भी ज्ञान न रहा। उसने एक बड़ी भारी कसम खाकर कहा, "ये लो, मैं चला अब सीधे थानेको दरोगाके पास। इसका नतीजा न चखाया तो मैं वृन्दावन सामन्तका लड़का ही नहीं।"

उसका साला पढ़ा-लिखा आदमी था और गयासे उसकी पहलेसे ही दुश्मनी थी; उसने कहा, "कानूनन यह अनधिकार-प्रवेश है। लाठी लेकर किसीके घरपर चढ़ आना, चीज-वस्त तोड़ना, औरतोंपर हाथ उठाना,—

इसकी सजा है छै महीनेकी कैद। सामन्त साहब, तुम कमर कसके खड़े हो जाओ, फिर मैं दिखा दूँगा कि बाप-बेटे दोनों कैसे एक साथ जेलमें ठूँसे जाते हैं।"

शिबू फिर किसी बातकी दुविधा न करके सालेका हाथ पकड़कर सीधा चल दिया थानेको।

गंगामणिको सबसे ज्यादा गुस्सा था देवर और छोटी बहूपर। वह इसी बातको लेकर एक जबरदस्त तूफान खड़ा करनेकी गरजसे, अपने दरवाजेपर साँकल चढ़ाकर और हाथमें जलानेकी एक लकड़ी लेकर शम्भूके आँगनमें जाकर खड़ी हो गई। ऊँचे स्वरमें बोली, "क्योंजी छोटे लाला, लड़केसे मुझे मार खिलवाओगे? अब बाप-बेटे एक साथ हाजतमें जाओ।"

शम्भू अभी हाल ही अपने इस दूसरे विवाहके लड़केके साथ फलहार करके उठा था, भौजाईकी मूर्ति और उसके हाथमें जलती लकड़ी देखकर हतबुद्धि-सा खड़ा रह गया। बोला, "हुआ क्या है? मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम।"

गंगामणिने मुँह बनाकर जवाब दिया, "ज्यादा छिंदराओ मत! रहने दो। दरोगा साहब आ रहे हैं, उनके सामने कहना, कुछ नहीं मालूम!"

छोटी बहू घरसे निकलकर एक खम्भेके सहारे चुपचाप खड़ी हो गई। शम्भू भीतर ही भीतर डर गया, उसने गंगामणिके पास आकर एक हाथ थामकर कहा, "अपनी कसम खाता हूँ बड़ी बहू, हम लोग कुछ भी नहीं जानते।"

बात सच्ची है, इस बातको बड़ी बहू खुद भी जानती थी; परन्तु तब उदारताका समय नहीं था। उसने शम्भूके मुँहपर ही उसपर सोलहों आने दोष लादकर झूठ-सच मिलाकर गयारामकी करतूतका बखान किया। इस लड़केको जो जानते हैं, उनके लिए इस घटनापर अविश्वास करना कठिन था।

स्वल्पभाषिणी छोटी बहूने अब अपना मुँह खोला; अपने पतिसे कहा, "कैसी भई,—जैसा कहा था, हो न गया—कितने दिनसे कह रही हूँ, ओ जी, उस डाँकूको घरमें मत घुसने दो, तुम्हारे छोटे बच्चेको नाहक मार मारकर किसी दिन खून कर डालेगा। सो ध्यानमें ही नहीं लेते,—अब मेरी बात पक्की हो गई न?"

शम्भूने विनयके साथ गंगामणिसे कहा, "तुम्हें मेरी कसम है भाभी, भइया सचमुच ही थाने चले गये क्या?"

देवरके करुण कंठ-स्वरसे कुछ नरम होकर बड़ी बहूने जोर देते हुए कहा, "तुम्हारी कसम लालाजी, गये हैं। संगमें हमारा पंचू भी गया है।"

शम्भू बहुत ही डर गया। छोटी बहू पतिको लक्ष्य करके कहने लगी, "रोज रोज कहा करती हूँ, जीजी, नदीके उस पार कहीं सरकारी पुल बन रहा है, कितने ही लोग काम करने जाते हैं, वहीं ले जाकर उसे भी काममें लगा दो। वे चाबुक लगायेंगे और काम लेंगे,—भागनेका कोई रास्ता ही नहीं,—दो ही दिनमें सीधा हो जायगा। सो तो नहीं,—स्कूल भेज रहे हैं पढ़नेको। लड़का जैसे वकील-मुख्तार ही हो जायगा!"

शम्भूने कातर कंटसे कहा, "अरे, वहाँ क्या यों ही नहीं भेजा? सभी क्या वहाँसे घर लौट पाते हैं?—आधे आदमी तो मिट्टीमें दबकर न जाने कहाँ चले जाते हैं, कुछ पता ही नहीं लगता।"

छोटी बहूने कहा, "तो जाओ, बाप-बेटा मिलकर कैद भुगतो जाकर।"

बड़ी बहू चुप बनी रही। शम्भूने फिर उसका हाथ थामकर कहा, "मैं कल ही छोकरेको ले जाकर पाँचराके पुलके काममें लगा आऊँगा भाभी, मइयाको किसी तरह ठंडा कर लो। फिर कभी ऐसा नहीं होगा।"

उसकी स्त्रीने कहा, "लड़ाई-झगड़ा तो सब उसी धींगरेके पीछे ही होता है, तुमसे भी तो कितनी ही बार कहा है जीजी, उसे घरमें घुसने मत दिया करो, ज्यादा सिरपर चढ़ाना ठीक नहीं। मैं कुछ कहती नहीं, इसीसे; नहीं तो पिछले महीने तुम्हारे यहाँसे रातको मर्तवान केलेकी गहर कौन तोड़ लाया था? इसी डकैतका काम था। जैसा कुत्ता है, वैसा ही डंडा हुए बिना काम थोड़े ही चलता है। पुलके काममें भेज दो,—मुहल्ला सुखकी नींद सोवेगा!"

शम्भूने माँकी कसम खाकर कहा कि कल जैसे होगा वैसे लड़केको गाँवसे बाहर निकालकर तब वह पानी पीयेगा।

गंगामणि इस बातपर भी कुछ नहीं बोली, हाथकी लकड़ी फेंककर चुपचाप घर चली गई।

पति, भाई,—अभी तक किसीने मुँहमें पानी नहीं दिया। तीसरे पहर वह विषण्ण मुखसे उन्हींको खिलानेकी तैयारी कर रही थी, इतनेमें इधर उधर झाँकते हुए गयारामने प्रवेश किया। यह जानकर कि घरमें और कोई नहीं है उसने साहसके साथ ताईके एकदम पीछे आकर कहा, "ताई!"

ताई चौंक पड़ी, मगर बोली नहीं। गयाराम पास ही थका हुआ-सा धपसे बैठ गया। बोला, "अच्छा, जो कुछ है वही दे, मुझे बड़े जोरकी भूख लगी है!"

खानेकी बात सुनकर गंगामणिका शान्त क्रोध फिरसे धधक उठा! उन्होंने गयाकी तरफ विना देखे ही गुस्सेके साथ कहा, "बेहया जलमुँहा, फिर मेरे पास आया,—भूख लगी है। दूर हो, निकल यहाँसे।"

गयाने कहा, "निकल जाऊँ तेरे कहनेसे?"

ताईने डाँटकर कहा, "हरामजादे, पाजी, मैं अब दूँगी तुझे खाने?"

गयाने कहा, "तू नहीं देगी तो कौन देगा? क्यों तू चूहेका नाम लेकर झूट बोली? क्यों अच्छी तरह नहीं कहा कि बेटा, इसीसे खा ले, आज और कुछ है नहीं। तब तो मझे गुस्सा नहीं आता। दे न जल्दी, डायन, मेरा पेट जो जला जाता है!"

ताई कुछ देर तक मौन रहकर मन ही मन जरा नरम होकर बोली, "पेट जल रहा है, तो अपनी सौतेली माँके पास जा।"

सौतेली माँका नाम सुनते ही पल-भरमें गया आग-बबूला हो उठा। बोला, "उस अभागिनका अब मैं मुँह देखूँगा? मैं तो सिर्फ मछली पकड़नेका काँटा लेने गया था, सो कहती है, 'निकल, निकल, अब जा जेलका भात खाने, जा!' मैंने कहा, 'मैं तेरा भात खाने नहीं आया, मैं जाता हूँ ताईके पास। मुँहजली कैसी शैतान है! उसीने जाकर इतनी उलटी सीधी जाकर भिड़ाई है, तभी तो बाबूजीने आकर तेरे हाथसे पत्ते छीने थे!" इतना कहकर उसने जोरसे जमीनपर पैर पटका और कहा, "डायन, तू अपने आप पत्ते लाने क्यों गई। झूठमूठकी जाकर अपनी इज्जत आप खोई। मुझसे क्यों नहीं कह दिया? उस बाँसके झाड़में आग लगाकर मैंने सबका सब न जला दिया तो मेरा नाम नहीं,—देख लेना! उस अभागीने मुझसे क्या कहा, जानती है ताई? कहा है कि तेरी ताईने थानेमें खबर दे दी है, दरोगा आकर तुझे बाँध ले जायगा, जेलमें ठूँस देगा।' सुन ली अभागीकी बात!"

गंगामणिने कहा, "तेरे ताऊ पंचूको साथ लेकर थाने तो गये ही हैं। तू मेरे ऊपर हाथ उठाता है, इतनी हिम्मत तेरी?"

पंचू-मामाको गया बिलकुल ही देख नहीं सकता था। वह भी इसमें

शामिल हुआ है सुनकर उसके आग-सी लग गई। बोला, "क्यों तू गुस्सेके वखत मुझे रोकने दौड़ी थी?"

गंगामणिने कहा, "इसलिए तू मुझे मारेगा, क्यों? अब जा, हवालातमें बन्द रहना जाकर।"

गयाने ठेंगा दिखाकर कहा, "ऊँह,—तू मुझे हवालातमें देगी? दे न, देकर जरा मजा देख न! आप ही रो रोकर मर मिटेगी,—मेरा क्या होगा!"

गंगामणिने कहा, "मेरी बला रोती है। जा, मेरे सामनेसे चला जा, कहती हूँ, दुसमन कहींका!"

गयाने चिल्लाकर कहा, "तू पहले खानेको दे न, तब तो जाऊँगा। भोरमें उठकर दो दाने मुरमुरोंके ही तो खाये थे,—भूक नहीं लगती मुझे?"

गंगामणि कुछ कहना ही चाहती थी, इतनेमें शिबू पंचूके साथ थानेसे लौट आया और गयापर निगाह पड़ते ही वह बारूदकी तरह जल उठा, बोला, "हरामजादे पाजी कहींके, फिर मेरे घर आ घुसा! निकल, निकल यहाँसे! पंचू, पकड़ तो सूअरको।"

बिजलीकी तरह गयाराम दरवाजेसे भाग खड़ा हुआ। चिल्लाता हुआ कह गया, "पंचुआ सालेकी टाँक न तोड़ दी तो मेरा नाम नहीं!"

पलक मारनेमें ही इतनी बातें हो गईं। गंगामणिको जबान हिलानेका भी मौका नहीं मिला।

क्रोधमें भरे हुए शिबूने अपनी स्त्रीसे कहा, "तेरी शह पाकर ही तो ऐसा हो गया है। अब आइन्दा कभी हरामजादेको घरमें घुसने दिया, तो तुझे बड़ी भारी कसम है।"

पंचूने कहा, "जीजी, तुम्हारा क्या बिगड़ेगा, हमारा ही सत्यानाश होगा! कब रात-बिरातमें कहीं छिपकर टाँगपर लट्ठ मार दे, कोई ठीक है!"

शिबूने कहा, "कल सवेरे ही अगर पुलिस-पियादे लाकर उसे न बँधवाया तो मेरा—" इत्यादि इत्यादि।

गंगामणि पत्थर-सी बैठी रही,—एक शब्द भी उसके मुँहसे न निकला; डरपोक पंचू उस दिन रातको घर ही नहीं गया, वहींपर सो रहा।

दूसरे दिन, करीब दस बजे दारोगा साहब बाकायदा दक्षिणा आदि लेकर पालकीपर सवार होकर दो कोस चलकर कानिस्टिबिल और चौकीदारोंके साथ सरेजमीन तहकीकात करने आ पहुँचे। अनधिकार-प्रवेश, चीज-वस्त

नुकसान, जलती लकड़ीसे औरतको मारना वगैरह बड़ी बड़ी धाराओंके अभियोग थे,—सारे गाँव-भरमें बड़ी भारी हलचल-सी मच गई।

मुख्य आसामी गयाराम था। उसे हिकमतके साथ पकड़ लाया गया। पुलिस कानिस्टबिल, चौकीदार वगैरहको देखते ही वह रो दिया; बोला, "मुझे कोई फूटी आँख देख नहीं सकते, इसीसे ये मुझे हवालातमें देना चाहते हैं।"

दरोगा वृद्ध आदमी थे। उन्होंने आसामीकी उमर और रोना देखकर दयार्द्रचित्तसे पूछा, "तुमको कोई प्यार नहीं करता गयाराम ?"

गयाने कहा, "सिर्फ मेरी ताई मुझे प्यार करती है, और कोई नहीं।"

दरोगाने पूछा, "तो फिर ताईको मारा क्यों ?"

गयाने कहा, "नहीं, मारा नहीं है।" किवाड़की ओटमें गंगामणि खड़ी थी, उस तरफ देखकर बोला, "तुझे मैंने कब मारा है, ताई ?"

पंचू पास ही बैठा था, उसने जरा कटाक्षसे देखकर कहा, "जीजी, हजूर पूछ रहे हैं, सच बात कहना। उसने कल दोपहरको मकानमें घुसकर लकड़ीसे तुम्हें नहीं मारा था ? धर्मावतारके सामने झूठ मत बोलना !"

गंगामणिने अस्पष्ट आवाजमें जो कुछ कहा, पंचूने उसीको स्पष्ट स्वरमें दुहरा दिया, "हाँ, हुजूर, मेरी जीजी कहती हैं उसने मारा है।"

गया आग-बबूला होकर चिल्ला उठा, "देख पंचुआ, तेरा मैंने पैर न तोड़ दिया तो—" गुस्सेमें उसकी बात पूरी न हो पाई,—वह रो दिया।

पंचू उत्तेजित होकर बोला उठा, "देख लिया हजूर ! देखा आपने, हजूरके सामने ही कह रहा है पैर तोड़ देगा,—हजूरके पीठ पीछे तो खून कर सकता है। उसे बाँधनेका हुकम दिया जाय, हुजूर।"

दरोगा सिर्फ जरा मुसकाराये। गयाने आँखें पोंछते हुए कहा, "मेरी अम्मा नहीं है, इसीसे ! नहीं तो—" अबकी बार भी उसकी बात पूरी न हो पाई। जिस माँकी उसे याद तक नहीं, याद करनेकी कभी जरूरत भी नहीं पड़ी, आज आफतके दिन अकस्मात् उसीको याद करके वह झर झर आँसू बहाता हुआ रोने लगा।

दूसरे आसामी शम्भूके खिलाफ कोई बात साबित ही नहीं हुई। दरोगा साहब अदालतमें नालिश करनेका हुक्म देकर रिपोर्ट लेकर चले गये। पंचूने मामला चलाने और बाकायदा उसकी तदबीर करनेकी सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली, और वह चारों तरफ इस बातका ढिंढोरा-सा

पीटता फिरा कि उसकी बहिनको बुरी तरह मारनेके कसूरपर गयाको कड़ी सजा हो जायगी।

* * * *

परन्तु गया बिलकुल लापता है। पास-पड़ोसके लोग शिवूके इस आचरणकी अत्यन्त निन्दा करने लगे। शिवू उनसे लड़ता फिरने लगा, लेकिन उसकी स्त्री बिलकुल चुपचाप है। उस दिन गयाकी एक दूरके नातेकी मौसी खबर पाकर शिवूके घर आई और उसकी स्त्रीको जैसी मनमें आई भलीबुरी खरी-खोटी सुनाकर चली गई, मगर गंगामणि बिलकुल मौन बनी रही। शिवूने पड़ोसीसे सब सुनकर गुस्सेके साथ अपनी स्त्रीसे कहा, "तू चुपचाप सब सुनती रही, कुछ जवाब नहीं दिया गया?"

शिवूकी स्त्रीने कहा, नहीं।"

शिवूने कहा, "मैं घर होता तो उस लुगाईको झाड़ू मार कर बिदा करता।"

स्त्रीने कहा, "तो आजसे तुम घरहीमें बैठे रहा करो और, कहीं न जाया करो" यह कहकर वह अपने कामसे चली गई।

उस दिन दोपहरको शिवू घरपर नहीं था। शम्भू आकर बाँसके झाड़से कईएक बाँस काटकर ले गया। आवाज सुनकर शिवूकी स्त्रीने बाहर आकर अपनी आँखोंसे सब देखा। परन्तु रोकना तो दूर रहा, आज वह पास तक नहीं फटकी, चुपचाप घर लौट आई। दो दिन बाद शिवूको पता लगा तो वह उछलने लगा। स्त्रीसे आकर बोला, "तेरे क्या कान फूट गये हैं? घरके बगलसे वह बाँस काटकर ले गया, और तुझे कुछ मालूम ही नहीं?"

स्त्रीने कहा, "क्यों, मालूम क्यों नहीं होगा, मैंने अपनी आँखोंसे सब देखा है।"

शिवूने क्रुद्ध होकर कहा, "तो भी तूने मुझसे नहीं कहा?"

गंगामणिने कहा, "कहती क्या! बाँसका झाड़ क्या तुम्हारा अकेलेका है? लालाजीका उसमें हिस्सा नहीं है?"

शिवू मारे आश्चर्यके दंग रह गया, बोला, "तेरा क्या माथा खराब हो गया है?"

उस दिन शामको वाद पंचू सदर-कचहरीसे लौटकर हारा-थका-सा धपसे आकर बैठ गया। शिवू गाय-बैलोंके लिए कड़वी कूट रहा था, अँधेरेमें उसके

मुँह और आँखोंकी मुसकराहटपर उसकी निगाह नहीं पड़ी। उसने डरते हुए पूछा, "क्या हुआ?"

पंचूने गम्भीरताके साथ जरा हँसते हुए कहा, "पंचूके रहते जो होना चाहिए, वही हुआ! वारंट निकलवाकर तब कहीं आ रहा हूँ; अब वह है कहाँ, मालूम होते ही बस!"

शिवूको न जाने कैसी एक जिद-सी सवार हो गई थी। उसने कहा, "चाहे जितना खर्च हो जाय, लौंडेको एक बार पकड़वाना ही है। उसे जेलमें ठुँसवाकर तब मैं और काम करूँगा।"

इसके बाद दोनोंमें तरह तरहकी सलाहें होने लगीं। रातके ग्यारह बज गये, पर भीतरसे खानेका तकाजा न आते देख शिवूको आश्चर्य हुआ। उसने रसोईघरमें जाकर देखा, बिलकुल अन्धकार है।

सोनेकी कोठरीमें जाकर देखा, स्त्री जमीनपर चटाई बिछाकर सो रही है। क्रोध और आश्चर्यसे उसने पूछा, "खानेको हो गया, तो हमें बुलाया क्यों नहीं?"

गंगामणिने धीरेसे करवट लेते हुए कहा, "किससे बनाया जो हो गया?"

शिवूने कड़ककर पूछा, "बनाया ही नहीं अभी तक?"

गंगामणिने कहा, "नहीं। मेरी तबीयत अच्छी नहीं, आज मुझसे नहीं बनेगा।"

मारे भूखके शिवूकी नाड़ी तक जल रही थी, उससे अब सहा नहीं गया। पड़ी हुई स्त्रीकी पीठपर उसने एक लात जमाते हुए कहा, "आजकल रोज ही तबीयत खराब रहती है नहीं बनेगा क्यों? नहीं बनेगा तो जा, निकल जा घरसे।"

गंगामणि न तो कुछ बोली ही और न उठकर बैठी। जैसी पड़ी हुई थी, वैसी ही पड़ी रही। उस दिन रातको साले-बहनोई किसीने भी कुछ नहीं खाया

सबेरे देखा गया कि गंगामणि घरमें नहीं है। इधर-उधर कुछ देर ढूँढने-ढाँढ़नेके बाद पंचूने कहा, "जीजी जरूर हमारे यहाँ चली गई होंगी।"

स्त्रीके इस तरहके आकस्मिक परिवर्तनका कारण शिबू भीतर ही भीतर समझ गया था; इसीसे एक ओर उसकी झुँझलाहट जैसे उत्तरोत्तर बढ़ने लगी, नालिश मुक़द्दमेकी तरफ झुकाव भी वैसे ही धीरे धीरे घटने लगा। उसने सिर्फ इतना कहा, "चूल्हेमें जाय, मुझे ढूँढ़नेकी जरूरत नहीं।"

शामको खबर मिली कि गंगामणि माके घर भी नहीं गई। पंचूने भरोसा देकर कहा, "तो फिर बुआके घर चली गई हैं।"

उसकी एक बुआ धनी घरमें ब्याही थीं, गाँवसे करीब पाँच-छै कोसकी दूरीपर एक गाँवमें वे रहती हैं। पूजा-परब आदि उत्सवोंमें कभी कभी वे गंगामणिको लिवा ले जाया करती हैं। शिबू अपनी स्त्रीको बहुत ज्यादा चाहता था। उसने मुँहसे कह तो दिया कि 'जहाँ खुशी हो जाने दो! मरने दो!' पर भीतर ही भीतर वह पछता रहा था और उत्कंठित हो उठता था। फिर गुस्सेमें पाँच-छै दिन बीत गये। इधर काम-काज और गाय-बैलोंके मारे गिरस्तीका काम बिलकुल रुकसा गया। अन्तमें यह हालत हो गई कि एक दिन भी कटना मुश्किल हो गया।

सातवें दिन वह खुद तो नहीं गया, पर अपने पौरुषको गंगामें बहाकर उसने बुआके घर बैलगाड़ी भेज दी।

दूसरे दिन सूनी गाड़ी आकर दरवाजेसे लगी, खबर मिली कि वहाँ कोई नहीं है। शिबू सिर थामकर बैठ गया।

तमाम दिन खाना पीना-नहाना कुछ भी नहीं, मुरदेकी तरह एक तखतपर पड़ रहा; इतनेमें पंचूने अत्यन्त उत्तेजित भावसे घरमें घुस कर कहा, "सामन्त साहब, पता लग गया।"

शिबू भड़भड़ाकर उठकर बैठ गया, पूछा, "कहाँ, किसने खबर दी? बीमार-ईमार तो कुछ नहीं हुई? गाड़ी लेकर चल न, दोनों जनें अभी चले चलें।"

पंचूने, "जीजीकी बात नहीं कह रहा हूँ, गयाका पता लग गया।"

शिबू फिर पड़ रहा, कोई बात उसने नहीं की।

तब पंचू बहुत तरहसे समझाने लगा कि "इस मौकेको किसी भी तरह हाथसे नहीं जाने देना चाहिये। जीजी तो एक न एक दिन आ ही जायँगी, मगर तब फिर इस बदमाशको पाना मुश्किल हो जायगा।"

शिबूने उदास कंठसे कहा, "अभी रहने दो पंचू! पहले वह लौट आवे उसके बाद—"

पंचूने बाधा देते हुए कहा, "उसके बाद फिर क्या होगा, सामन्तजी? बल्कि जीजीके आनेसे पहले ही काम खतम कर डालना चाहिए। उसके आ जानेपर फिर शायद होगा ही नहीं।"

शिबू राजी हो गया। परन्तु अपने सूने घरकी ओर देखकर दूसरोंसे बदला चुकानेका जोर उसे किसी भी तरह मिल ही नहीं रहा था। अब पंचू ही जोर लगाकर उससे काम ले रहा था।

दूसरे दिन रात रहते ही वे अदालतके पियादे नवीनको लेकर निकल पड़े। रास्तेमें पंचूने सुनाया, बड़ी मुश्किलसे खबर मिली है कि शम्भूने उसे नाम बदल कर पाँचलाके सरकारी पुलके काममें भरती कर दिया है। वहीं उसे गिरफ्तार किया जायगा।

शिबू बराबर चुप ही बना रहा था, अब भी चुप रहा।

जब वे उस गाँवमें घुसे, तब दोपहर हो चुका था। गाँवके एक तरफ बड़ा भारी मैदान था, उसमें बहुत-से आदमी, लकड़ी-लोहा और कल-कारखानेका सामान भरा पड़ा था,—चारों तरफ छोटी छोटी झोंपड़ियाँ-सी बनी हुई थीं जिनमें मजदूर वगैरह रहते थे। बहुत पूछ ताछ करनेके बाद एक आदमीने कहा, "जो लड़का साहबके बंगलेमें खिदमत-बर्दारी काम करता है, वही तो! उसका घर वह रहा—" कहकर उसने एक छोटी-सी झोंपड़ी दिखा दी। समाचार पाकर वे दबे-पाँव चुपकेसे बड़ी मुश्किलसे उस झोंपड़ीके सामने पहुँचे। भीतर गयारामकी आवाज सुनाई दी। पंचू मारे खुशीके फूलकर पियादे और शिबूके साथ वीर-दर्पसे अकस्मात् झोंपड़ीका दरवाजा रोककर खड़ा हो गया; पर ज्यों ही उसकी निगाह भीतर गई, त्यों ही उसका चेहरा विस्मय, क्षोभ और निराशासे काला स्याह पड़ गया। उसकी जीजी भात परोसकर एक हाथसे पंखा कर रही है और गयाराम बैठा खा रहा है!

शिबूको देखते ही गंगामणिने सिरका पल्ला खींचकर सिर्फ इतना कहा, "तुम लोग जरा ठंडे होकर नदीमें नहा आओ, मैं तब तक फिरसे चावल चढ़ाये देती हूँ।"



हरिचरण

उस बातको आज बहुत दिन हो गये। क़रीब दस-बारह वर्ष पहलेकी बात है। तब दुर्गादास बाबू वकील नहीं हुए थे। दुर्गादास शर्माको शायद तुम अच्छी तरह नहीं पहचानते; पर मैं खूब जानता हूँ। आओ, उनके साथ तुम्हारा परिचय करा दूँ।

एक बिना माँ-बापका अनाथ कायस्थ बालक न जाने कहाँसे आकर रामदास बाबूके घर रहने लगा था। सभी कहते, लड़का बड़ा अच्छा है। सुन्दर और समझदार है। दुर्गादास बाबूके पिताका 'बड़ा प्यार नौकर' है। छोटे-बड़े सभी काम वह खुद करनेको तैयार रहता। गायको सानी देनेसे लेकर रामदास बाबूके पैर दबाने तक सभी काम वह खुद बड़े चावसे करता। हर वक्त किसी न किसी काममें लगे रहना, बस, यही उसे पसन्द था।

लड़केका नाम था हरिचरण। मालिकिनको अकसर उसका काम देखकर आश्चर्य होता। इसके लिए कभी कभी वे उसे डाँटतीं थीं, कहतीं, "हरिया, और भी नौकर हैं, वे कर लेंगे; तू अभी लड़का है, तू क्यों इतनी मेहनत करता है?" हरिमें अवगुण भी था, वह हँसना बहुत पसन्द करता था हँसकर कहता, 'माजी, हम लोग गरीब आदमी ठहरे, हमेशा मेहनत-मजूरी ही तो करनी है, और करना क्या है।'

इस तरह सुख-दुख, लाड़-प्यार और काम धन्धेमें हरिचरणने लगभग एक साल बिता दिया।

* * * *

सुरबाला रामदास बाबूकी छोटी लड़की है। उसकी उमर होगी क़रीब पाँच-छै सालकी। हरिचरणसे सुरबाला खूब हिल गई थी, दोनोंमें खूब बनती थी। जब दूध पिलानेके लिए माँ और बेटीमें द्वन्द्व युद्ध होता, बहुत कुछ कह-सुनकर भी जब वे इस छोटी-सी लड़कीको दूध न पिला सकतीं, जब दूध पीनेकी खास जरूरत और उसके न पीनेसे लड़कीके जल्दी मर जानेकी

आशंकासे व्याकुल हो मारे गुस्सेके झल्लाकर वे ज़ोरसे लड़कीके गाल मसक देतीं, और फिर भी दूधके लिए उसे राजी न कर पातीं, तब,—वैसी हालतमें भी हरिचरणके कहनेसे वह दूध पी लेती।

बहुत-सी फालतू बातें बक डालीं, जाने दो। अब मतलबकी बात कहता हूँ, सुनो। समझ लो कि हरिचरणको सुरबाला खूब प्यार करती थी।

दुर्गादास बाबूकी उमर जब बीस सालकी थी, तबकी बात कह रहा हूँ। दुर्गादास तब कलकत्तेहीमें पढ़ते थे। घर आनेमें दिक्कत बहुत थी,—पहले स्टीमरपर चढ़ो, फिर दस-बारह कोस पैदल चलो,—बहुत झंझटका रास्ता था। इसीलिए दुर्गादास घर बहुत कम आते थे।

लड़का बी० ए० पास करके घर आया है। माँ बहुत व्यस्त हो रही हैं। लड़केको अच्छी तरह खिलाने-पिलाने सेवा-प्यार करनेमें मानो सारे घरके लोग एक साथ उत्कण्ठित हो उठे हैं।

दुर्गादासने पूछा, "माँ, यह लड़का कौन है?" माँने कहा, "यह एक कायथका लड़का है; मा-बाप कोई है नहीं, इसीसे तुम्हारे बाबूने इसे रख लिया है। नौकरका काम-काज सब करता है, और बड़ा सीधा है; कोई कुछ भी कहे, गुस्सा नहीं होता। बेचारेके बाप-महतारी कोई भी नहीं,—अभी लड़का ही तो है,—मुझे बड़ा प्यारा लगता है।

घर आकर दुर्गादास बाबूको हरिचरणका यह पहले-पहल परिचय मिला।

खैर, आजकल हरिचरणको काम बहुत करना पड़ता है, इससे वह खुश है, नाराज़ नहीं। छोटे बाबू (दुर्गादास) को नहलाना, जरूरतके माफिक पानीका लोटा रख देना, वक्तपर पानका डब्बा हाजिर करना, मौकेपर गड़गड़ा भर लाना,—इन कामोंमें हरिचरण बहुत पटु था। दुर्गादास बाबू भी अकसर सोचा करते, लड़का बड़ा 'इण्टेलिजण्ट' है। लिहाज़ा, धोती चुनना, तमाखू भरना आदि काम यदि हरिचरण न करता तो दुर्गादास बाबूको पसन्द ही न आते थे।

* * * *

कुछ समझमें नहीं आता, कहाँका पानी कहाँ जाकर मरता है। याद है! एक बार हम दोनोंने रोते रोते एक बड़ा ही दुरूह तत्त्व पढ़ा था। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि शायद सभी बातोंमें वह तत्त्व लागू होता है। क्या दुनियामें 'कर भला, होगा भला' ही होता है? 'कर भला होगा बुरा'

होता ही नहीं ? अगर तुमने न देखा हो तो आओ, आज तुम्हें दिखा दूँ वह बड़ा ही दुरूह तत्त्व।

मैं नहीं कहता कि ऊपर लिखी बातें समझमें आ ही जानी चाहिए, और इसकी जरूरत भी नहीं है। और न मेरा यह उद्देश ही है कि तुम्हें फिलासफी (दर्शन-शास्त्र) का उपदेश दूँ। फिर भी, आपसमें दो बातें कह रक्खूँ तो हर्ज ही क्या है ?

आज दुर्गादास बाबूको किसी गहरी दावतमें जाना है। घरमें नहीं खायेंगे, शायद लौटनेमें भी बहुत रात हो जायगी। इसलिए, रोजका काम-काज करके हरिचरणको सो जानेके लिए कह गये हैं।

अब हरिचरणकी बात कहता हूँ। दुर्गादास बाबू रातको बाहरवाले कमरेमें ही सोते थे। उसका कारण सब नहीं जानते थे। मेरी समझमें स्त्रीके नैहर चले जानेपर बाहर सोना ही उन्हें अधिक पसन्द था।

रातको छोटे बाबूके लिए बिस्तर बिछाना, सोनेपर उनके पैर दबाना, इत्यादि काम हरिचरणहीके जिम्मे था। बादमें जब वे अच्छी तरह सो जाते, तब हरिचरण बगलकी कोठरीमें जाकर सो जाता।

शाम होनेके पहलेहीसे हरिचरणके सिरमें दर्द होने लगा। वह समझ गया कि अब बुखार आनेमें अधिक विलम्ब नहीं है। बीच-बीचमें अकसर उसे बुखार आ जाया करता था, इसलिए उसके पूर्व-लक्षणोंसे वह अच्छी तरह परिचित था। हरिचरणसे जब बिलकुल बैठा नहीं गया, तो जाकर वह सो रहा। इस बातका उसे होश तक न रहा कि छोटे बाबूके अभी बिस्तर बिछाना बाकी हैं। रातको सबने खाया-पीया; पर हरिचरण खाने नहीं आया। उसकी 'माजी' उसे देखने आईं। देहपर हाथ रखकर देखा, बहुत गरम है। समझ गईं कि बुखार आ गया है, इसलिए उसे तंग न करके चली गईं।

रातके करीब बारह-एक बजे होंगे। दावत खाकर छोटे बाबू घर आये; देखा तो बिस्तर तक नहीं हुए हैं! एक तो नींद आ रही थी, दूसरे रास्ते-भर यह सोचते हुए आ रहे थे कि घर चलकर मौज़से सो जायँगे,—हरिया उनके थके हुए पैरोंको जूतोंसे मुक्त करके उन्हें धीरे धीरे दबाता जायगा और उस सुखमें थोड़ी-सी तन्द्राके झोके लेते हुए फरशीका नैचा मुँहसे लगाकर एक साथ देखेंगे कि सवेरा हो गया है।

बिलकुल हताश होकर वे बहुत बिगड़े, अत्यन्त क्रुद्ध होकर दो-चार बार

जोर-जोरसे पुकारा, 'हरी, हरीया, ए हरिया!' हरिया हो, तो बोले! बेचारा बुखारमें बेहोश पड़ा था। तब दुर्गादास बाबूने सोचा, 'नालायक़ सो गया मालूम होता है।' कोठरीमें जाकर देखा, सचमुच ओढ़े पड़ा है।

अब और सहन नहीं हुआ। बड़े जोरसे बाल पकड़कर उसे उठाकर बैठानेकी कोशिश की, मगर वह फिर ज्योंका त्यों पड़ गया। अब तो बाबू विषम क्रोधसे हिताहितज्ञान-शून्य हो गये, हरियाके पीठपर कसकर एक जूतेकी ठोकर जमा दी। उस कड़ाकेकी चोटसे वह चैतन्य-लाभ कर उठ बैठा। दुर्गादास बाबूने कहा, "छोटेसे बच्चोंके माफ़क सो गया है, बिस्तर क्या मैं करूँगा?" यह कहते हुए गुस्सा और बढ़ गया, ऊपरसे दो-तीन बेत और जमा दिये।

रातको, हरि जब पद-सेवा कर रहा था, तब जान पड़ता है गरम पानीकी एक बूँद बाबूके पाँवपर गिरी थी।

*　　　　*　　　　*　　　　*

सारी रात दुर्गादास बाबूको नींद नहीं आई। वह पानीकी एक बूँद उन्हें बड़ी गरम मालूम हुई। हरिचरणको वे बहुत ही प्यार करते थे। अपनी नम्रताके कारण उन्हींका क्यों, वह सभीका प्रियपात्र था। ख़ासकर, इस महीने-भरकी घनिष्ठतासे वह और भी प्रिय बन गया था।

रातको कई बार उन्होंने सोचा कि एक बार जाकर देख आवें: कहाँ लगी है, कितना सूजा है? मगर वह नौकर ठहरा, उनका जाना क्या ठीक होगा? कई बार सोचा कि चलकर पूछ तो लें कि बुखार कुछ ढीला पड़ा? पर उसके पास जानेमें उन्हें शर्म मालूम होने लगी। सबेरे हरिचरणने बाबूको हाथ-मुँह धोनेके लिए पानी ला दिया, और फरशी सुलगाकर रख गया। दुर्गादास बाबू तब भी अगर पूछ लेते, सान्त्वनाके दो-एक शब्द कह देते! वह तो अभी लड़का है, उसकी अभी उमर ही क्या है,—तेरह साल पूरे भी न हुए होंगे। लड़का समझकर ही एक बार पास बुलाकर देख लेते,—बेंत कहाँ लगा है, कैसे खून जम गया है, बूट जूतेकी ठोकरसे कितना सूज गया है! आखिर लड़का ही तो ठहरा, उसमें इतनी शरमानेकी कौन-सी बात थी?

करीब नौ बजे कहींसे एक तार आ पहुँचा। तारकी बात सुनते ही दुर्गादास बाबूका तार बेतार हो गया, कुछ घबरा-से गये। खोलकर पढा, स्त्री सख्त बीमार! एकाएक उनका कलेजा बैठ गया। उसी दिन उन्हें कलकत्ते

चला जाना पड़ा। गाड़ीपर सवार होते ही सोचने लगे, भगवान्! कहीं प्रायश्चित्त तो नहीं हो रहा है!

करीब एक महिना बीत गया। दुर्गादास बाबूका चेहरा आज बहुत खुश था, उनकी स्त्रीकी नई जिन्दगी हुई समझो,—मरते मरते बची है। आज पथ्य लिया है।

घरसे आज एक चिट्ठी आई है। दुर्गादास बाबूके छोटे भाईने लिखी है। उसके नीचे 'पुनश्च' लिखकर लिखा है, 'बड़े दुःखकी बात है, कल सवेरे दस दिन ज्वरमें पड़ा रहकर हरिचरण मर गया। मरनेसे पहले उसने अनेक बार आपको देखना चाहा था।'

आहा! बेचार बिना माँ-बापका अनाथ लड़का।

दुर्गादास बाबूने चिट्ठीको टुकड़े टुकड़े फेंक दिया।

हरिलक्ष्मी

जिस बातको लेकर इस कहानीकी उत्पत्ति हुई वह छोटी-सी है, फिर भी उस छोटी-सी बातसे हरिलक्ष्मीके जीवनमें जो कुछ हो गया, वह छोटा भी नहीं, तुच्छ भी नहीं। संसारमें ऐसा ही हुआ करता है। वेल-पुरके दो 'शरीक' (जमींदारीके साझीदार), शान्त नदी-किनारे जहाजके पास, छोटी डोंगीकी तरह, परस्पर एक दूसरेके पास निरुपद्रव बँधे थे। अकस्मात् न मालूम कहाँसे एक तूफान उठ खड़ा हुआ,—जहाजका रस्सा कटा और लंगर टूटकर अलग हो गया,—साथ ही एक क्षणमें वह छोटी-सी डोंगी न जाने कैसे नेस्तनाबूद हो गई, कुछ पता ही ढूँढ़े न मिला।

बेलपुरका ताल्लुका कोई बड़ा नहीं। उठते-बैठते रैयतोंको मार-पीटकर सालमें बारह हजारसे ज्यादा वसूली नहीं होती; इसलिए, साढ़े पन्द्रह आनेके हिस्सेदार शिवचरणके सामने दो-पैसेके हिस्सेदार विपिनविहारीकी तुलना अगर जहाजके साथ छोटी डोंगीसे की है, तो इसमें शायद कोई अतिशयोक्ति न हुई होगी।

दूरका नाता होनेपर भी हैं दोनों जाति-भाई, और छह-सात पीढ़ी पहले दोनों एक ही मकानमें रहते थे; किन्तु, आज एकका तिमँजिला मकान गाँवके सिरपर खड़ा है और दूसरेका जीर्ण मटियाला घर दिनपर दिन जमीनपर बिछ जानेकी तरफ बढ़ता चला जा रहा है।

फिर भी, इसी तरह दिन कट रहे थे और बाकीके दिन भी विपिनके इसी तरह सुख-दुःखमें चुपचाप कट सकते थे, परन्तु, जिस बादलके टुकड़ेसे असमयमें तूफान उठ खड़ा हुआ और सब उलट पुलट गया, वह इस प्रकार है

साढ़े पन्द्रह आनेके हिस्सेदार शिवचरणकी पत्नीकी सहसा मृत्यु हो जानेपर। उनके मित्रोंने कहा, 'चालीस-इकतालीस क्या कोई उमरमें उमर है! तुम दूसरा ब्याह करो।' शत्रुपक्षके लोग सुनकर हँसने लगे। बोले, 'चालीसी तो शिवचरणकी चालीस वर्ष पहले हीं पार हो चुकी है!' मतलब यह है कि दोनोंमेंसे कोई भी बात सच नहीं। असल बात यह थी कि बड़े बाबूके

दिव्य गोरा हृष्टपुष्ट शरीर था, भरे हुए चेहरेपर लोमका चिह्नमात्र न था। यथासमय दाढ़ी-मूँछें न पैदा होनेसे कुछ सहूलियत तो हो सकती है, पर अड़चनें भी काफी होती हैं। उमरका अन्दाज़ा लगानेके बारेमें जो नीचेकी तरफ नहीं जाना चाहते, ऊपरकी ओर वे गिनतीके किस कोठेमें जाकर ठहरेंगे, इसकी उन्हें स्वयं ही कुछ थाह नहीं मिलती। खैर, कुछ भी हो, धनवान् पुरुषका ब्याह किसी भी देशमें उमरके पीछे नहीं रुकता, फिर बंगालमें तो रुकने ही क्यों लगा। करीब डेढ़ महीना तो शोक-ताप और 'नहीं नहीं' करते कराते बीत गया, उसके बाद शिवचरण हरिलक्ष्मीको ब्याह कर अपने घर ले आये। कारण, शत्रुपक्षके लोग चाहे कुछ भी क्यों न कहते रहें, यह बात माननी ही पड़ेगी कि प्रजापति* सचमुच ही उनपर अत्यन्त प्रसन्न थे। उन लोगोंने गुपचुप बातचीत की, 'यह बात नहीं; कि वरकी तुलनामें नववधूकी उमर बिलकुल ही असंगत हो; मगर हाँ, दो-एक बाल-बच्चे लेकर घर आती तो फिर कहने-सुननेकी कोई बात ही न रह जाती!' लेकिन, इस बातको सभीने स्वीकार किया कि वह सुन्दरी है। मतलब यह कि साधारणतः बड़ी उमरकी लड़कियोंसे भी लक्ष्मीकी उमर कुछ ज्यादा हो गई थी, शायद उन्नीससे कम न होगी। उसके पिता आधुनिक विचारके सुधारक आदमी हैं, उन्होंने बड़े जतनसे लड़कीको ज्यादा उमर तक शिक्षा देकर मैट्रिक पास कराया था। उनकी इच्छा तो कुछ और ही थी, सिर्फ व्यापार फेल हो जाने और आकस्मिक दरिद्रता आ जानेके कारण ही उन्हें ऐसे सुपात्रको कन्या अर्पण करनेके लिए लाचार होना पड़ा था।

लक्ष्मी शहरकी लड़की ठहरी, पतिको उसने दो ही चार दिनमें पहिचान लिया। उसके लिए उसके लिए मुश्किल यह हुई कि आत्मीय-स्वजन-आश्रित अनेक परिजनोंसे घिरे हुए इस बड़े घरमें वह जी खोलकर किसीसे हिल-मिल न सकी। उधर शिवचरणके प्रेमका तो कोई अन्त ही न था। सिर्फ वृद्धकी तरुणी भार्या होनेके कारण ही नहीं, उसे तो मानो एकबारगी ही अमूल्य निधि मिल गई। घरके लोग,—नौकर-चाकर और औरतें, कुछ ठीक न कर सके कि कैसे उसकी मिजाजपोशी करें; पर एक बात वह अकसर सुना करती थी,—अब मझली बहूके मुँहपर कालिख लग गई। रूपमें, गुणमें, विद्या-बुद्धिमें,—हरएक बातमें अब उसका गर्व चूर हो गया।

---

*विवाहके देवता।

मगर इसना करनेपर भी कुछ न हो सका, दो ही महीनेके अन्दर लक्ष्मी बीमार पड़ गई। इस बीमारीकी हालतमें ही एक दिन मझली बहूके साथ उसकी भेंट हुई। मझली बहूसे मतलब है विपिनकी स्त्रीसे। बड़े घरकी नई बहूके बुखारकी खबर सुनकर वह देखने आई थी। उमरमें वह शायद दो-तीन साल बड़ी होगी। इस बातको मन ही मन लक्ष्मीने भी स्वीकार किया कि वह सुन्दरी है, परन्तु इस उमरमें भी उसके सारे शरीरपर दरिद्रताकी भीषण मारके चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। साथमें छह-सात सालका एक लड़का था, वह भी दुबला-पतला ! लक्ष्मी आदरके साथ अपने बिछौनेपर एक तरफ बैठनेके लिए स्थान कर कुछ देर तक चुपचाप उसकी ओर देखती रही। हाथमें दो दो सोनेकी चूड़ियोंके सिवा सारे अंगपर और कोई गहना नहीं। पहनावमें अधमैली लाल किनारीकी धोती है, शायद वह उसके पतिकी होगी। गाँवकी प्रथाके अनुसार लड़का दिगम्बर नहीं था, उसकी भी कमरमें एक रँगी हुई छोटी धोती थी।

लक्ष्मीने मझली बहूका हाथ धीरेसे अपनी तरफ खींचते हुए कहा, सौभाग्यसे बुखार आ गया, तभी तो आपसे मुलाकात हो सकी। मगर रिश्तेमें मैं जिठानी होती हूँ, मझली बहू। सुना है कि मझले देवरजी इनसे बहुत छोटे हैं।"

मझली बहूने सहास्य मुँहसे कहा, "रिश्तेमें छोटी होनेपर क्या 'आप' कहा जाता है ?"

लक्ष्मीने कहा, "बस, पहले दिन जो कहा, सो कह दिया; नहीं तो 'आप' कहनेवाली मैं नहीं हूँ। मगर तुम भी मुझे 'जीजी' नहीं कह सकतीं,—यह मुझसे बरदाश्त न होगा। मेरा नाम लक्ष्मी है।"

मझली बहूने कहा, "नाम बतानेकी जरूरत नहीं, जीजी, आपको देखते ही मालूम हो जाता है। और मेरा नाम न मालूम किसने मजाकमें रख दिया था कमला,—" कहकर वह कुतूहलके साथ जरा हँस दी।

हरिलक्ष्मीके जीमें आया कि वह भी प्रतिवादस्वरूप कहे कि तुम्हारी तरफ देखनेसे ही तुम्हारा नाम मालूम हो जाता है; परन्तु वह इस डरसे कह न सकी कि ऐसा कहना नकलकी तरह सुनाई देगा। बोली, "हम दोनोंके एक ही माने हैं। लेकिन मझली बहू, मैं तुमसे 'तुम' कह सकी, पर तुमसे 'तुम' कहते नहीं बना।"

मझली बहूने हँसते हुए जवाब दिया, "चटसे निकलता नहीं मुँहसे

जीजी। एक उमरके सिवा और सभी बातोंमें आप मुझसे बड़ी हैं। अभी दो-चार दिन जाने दो;—जरूरत पड़नेपर बदलनेमें कितनी देर लगती है ?"

हरिलक्ष्मीके मुँहपर सहसा इसका प्रत्युत्तर तो नहीं आया, पर वह मन ही मन समझ गई कि यह औरत पहले दिनके परिचयको अधिक घनिष्ठ नहीं करना चाहती। मगर उसके कुछ कहनेके पहले ही मझली बहू उठनेकी तैयारी करके बोली, "तो अब उठती हूँ जीजी, कल फिर—"

हरिलक्ष्मी आश्चर्यान्वित होकर बोली, "अभीसे चली जाओगी कैसे, जरा बैठो।"

मझली बहूने कहा, "आप हुक्म करेंगी तो बैठना पड़ेगा; पर आज जाने दीजिए, जीजी, उनके आनेका समय हो गया है। इतना कहकर वह उठकर खड़ी हो गई और लड़केका हाथ पकड़कर जानेके पहले हँसती हुई बोली, "चलती हूँ जीजी। कल जरा सिदौसी चली जाऊँगी, क्यों ?" यह कहकर वह धीरेसे बाहर निकल गई।

विपिनकी स्त्रीके चले जानेपर हरिलक्ष्मी उसी तरफ देखती हुई चुपचाप पड़ी रही। अब बुखार नहीं था, पर उसकी ग्लानि बनी हुई थी। फिर भी कुछ देरके लिए वह सब-कुछ भूल गई! अब तक गाँव-भरकी इतनी बहू-बेटियाँ आई हैं, जिनका शुमार नहीं; परन्तु, बगलवाले गरीब-घरकी इस बहूके साथ उनकी कोई तुलना ही नहीं हो सकती। वे अपने आप आईं और उठना ही नहीं चाहती थीं। और बैठनेके लिए कहा गया, तो फिर कहना ही क्या! उनमें कितनी प्रगल्भता थी, कितनी वाचालता थी, मनोरंजन करनेके लिए कितना लज्जाजनक प्रयास था उनका! बोझसे दबा हुआ उसका मन बीच-बीचमें विद्रोही हो उठा है, परन्तु उन्हींमेंसे अकस्मात् यह कौन आकर, उसकी रोगशय्याके पास कुछ क्षणोंके लिए, अपना ऐसा परिचय दे गई ! उसके मायकेकी बात पूछनेका समय नहीं मिला; परन्तु, बिना पूछे ही लक्ष्मी न जाने कैसे समझ गई कि उसकी तरह वह कलकत्तेकी लड़की हरगिज नहीं। इसके लिए विपिनकी स्त्रीकी प्रसिद्धि है कि गाँवकी रहनेवाली होनेपर भी पढ़ी लिखी है। लक्ष्मीने सोचा, मुमकिन है कि मझली बहू स्वरके साथ रामायण-महाभारत पढ़ सकती हो, पर इससे ज्यादा और कुछ नहीं। जिस पिताने विपिन जैसे दीन-दुखीके हाथ अपनी लड़की सौंपी है, उसने कोई घरपर मास्टर रखकर और स्कूलमें पढ़ाकर पास कराके कन्यादान नहीं किया होगा। उज्ज्वल श्याम वर्ण है,—पर गोरा नहीं कहा जा सकता। रूपकी बात छोड़ दो,—शिक्षा, संस्कार, अवस्था, किसी भी बातमें

तो विपिनकी स्त्री उसके सामने टिक नहीं सकती। परन्तु एक बातमें लक्ष्मीने अपनेको मानो उससे छोटा समझा। वह था उसका कंठस्वर! मानो वह संगीत हो, और बात करनेका ढंग तो मानो बिलकुल मधुसे भरा हुआ था। जरा भी जड़ता नहीं, इतनी सहज-सरल बातचीत थी उसकी बातें मानो वह अपने घरसे कंठस्थ कर लाई हो। परन्तु, सबसे ज्यादा जिस चीजने उसे बाँध डाला, वह थी उसकी दूरी। इस बातको कि वह गरीब घरकी बहू है, मुँहसे न कहनेपर भी इस ढँगसे प्रकट कर गई कि मानो यही उसके लिए स्वाभाविक है,—मानो इसके सिवा और कुछ उसे शोभा नहीं देता।—यह बतानेके सिवा और किसी उद्देश्यका उसमें लेशमात्र भी नहीं था कि वह गरीब है, पर कंगाल नहीं। एक भले घरकी बहू दूसरे घरकी एक बीमार बहूको देखने आई है। शामको जब पति देखने आये, तब हरिलक्ष्मीने और और बातचीत होनेके बाद कहा, "उस घरकी मझली बहूसे आज भेंट हुई थी।"

शिवचरणने कहा, "किससे? विपिनकी बहूसे?"

हरिलक्ष्मीने कहा, "हाँ, मेरे भाग्य अच्छे थे जो इतने दिनोंके बाद खुद ही मुझे देखने आई थी। पर पाँचेक मिनटसे ज्यादा ठहरी नहीं; काम था, इसलिए चली गई।"

शिवचरणने कहा, "काम? अरे, उन लोगोंके घर कोई नौकर-नौकरानी थोड़े ही है। बासन माँजनेसे लगाकर बटलोई चढ़ाने तक सभी काम अपने हाथसे करने पड़ते हैं। भला तुम्हारी तरह पड़े पड़े बैठे बैठे आराम कर तो ले कोई! एक गिलास पानी तक तो तुम्हें अपने हाथसे भरकर नहीं पीना पड़ता।"

अपने सम्बन्धमें ऐसा मन्तव्य हरिलक्ष्मीको बहुत ही बुरा मालूम हुआ; पर यह समझकर वह गुस्सा नहीं हुई कि बात तो उसकी बड़ाई करनेके लिए ही कही गई थी, अपमान करनेके लिए नहीं। बोली, "सुना है कि मझली बहूके बड़ा घमंड है, अपना घर छोड़कर कहीं जाती-आती नहीं?"

शिवचरणने कहा, "जायगी कैसे? हाथोंमें दो दो चूड़ियोंके सिवा खाक-पत्थर कुछ पासमें है भी, मारे शरमके मुँह नहीं दिखा सकती।"

हरिलक्ष्मीने जरा हँसकर कहा, "इसमें शरम काहेकी? दुनियाके लोग क्या उसकी देहपर जड़ाऊ गहनेके लिए व्याकुल हो रहे हैं, जो न देखेंगे तो छिः छिः करते डोलेंगे?"

शिवचरणने कहा, "जड़ाऊ गहने? मैंने जो तुम्हें दिये हैं, किसी सालेके बेटेने वैसे आँखोंसे देखे भी हैं? अपनी स्त्रीको आज तक दो चूड़ियोंके

सिवा और कुछ बनवाकर न दे सका! हुँः हुँ बाबू, रुपयेका जोर बड़ा जोर है। जूता मारूँगा और—"

हरिलक्ष्मी क्षुण्ण और अत्यन्त लज्जित होकर बोली, "छिः छिः ऐसी बात क्यों कह रहे हो?"

शिवचरणने कहा, "नहीं नहीं, हमारे पास दबी-छिपी बात नहीं, जो कुछ कहूँगा सो साफ साफ कह दूँगा।"

हरिलक्ष्मी चुपचाप आँखें मीचे पड़ी रही। कहनेको और था ही क्या? ये लोग कमजोरोंके विरुद्ध अत्यन्त असभ्य बात कठोर और कर्कश स्वरमें कहनेको ही स्पष्टवादिता समझते हैं। शिवचरण शान्त न रहा; कहने लगा, "ब्याहमें जो पाँच सौ रुपये उधार लिये थे, उसके ब्याज-असल मिलाकर सात सौ हो गये, उसका भी कुछ ख्याल है? गरीब है,—एक किनारेसे पड़ा है, पड़ा रह। अरे मैं चाहूँ तो कान पकड़के निकाल बाहर कर सकता हूँ। जो दासीके लायक नहीं, वह मेरी स्त्रीके सामने घमण्ड दिखलाती है!"

हरिलक्ष्मी करवट बदलकर सो रही। एक तो बीमार, उसपर विरक्ति और लज्जासे उसके सारे शरीरमें मानो भीतरसे कँपकँपी आने लगी।

दूसरे दिन दोहपरको घरमें मृदु शब्द सुनकर हरिलक्ष्मीने आँख खोलकर देखा तो विपिनकी स्त्री चुपकेसे बाहर जा रही है। उसने बुलाकर कहा, "मझली बहू, चली जा रही हो जो?"

मझली बहूने शरमाते हुए लौटकर कहा, "मैंने सोचा कि आप सो रही हैं। आज कैसी तबीयत है जीजी?"

हरिलक्ष्मीने कहा, "आज बहुत अच्छी हूँ। कहाँ, तुम अपने लल्लाको तो नहीं लाईं?"

मझली बहूने कहा, "आज वह अचानक सो गया, जीजी।"

"अचानक सो गया, इसका मतलब?"

"आदत खराब हो जायगी, इसलिए दिनमें मैं उसे सोने नहीं देती, जीजी।"

हरिलक्ष्मीने पूछा, "घाममें ऊधम करता नहीं फिरता?"

मझली बहूने कहा, "करता क्यों नहीं फिरता? मगर दोपहरको सोनेकी अपेक्षा वह कहीं अच्छा।"

"तुम खुद शायद नहीं सोतीं?"

मझली बहूने हँसते हुए सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

हरिलक्ष्मीने सोचा था, स्त्रियोंके स्वभावके अनुसार अबकी बार शायद वह अपने अनवकाशकी लम्बी सूची सुनाने बैठ जायगी, मगर उसने ऐसी कोई बात नहीं की। इसके बाद और और बातें होने लगीं। बात-बातमें हरिलक्ष्मीने अपने मायकेकी बात, भाई-बहनकी बात, मास्टर साहबकी बात, स्कूलकी बात,—यहाँ तक कि अपने मैट्रिक पास करनेकी बात भी कह डाली। बहुत देर बाद जब उसे होश आया, तब उससे स्पष्ट देखा कि मझली बहू श्रोताके लिहाजसे चाहे जितनी अच्छी क्यों न हो, वक्ताके लिहाजसे वह कुछ भी नहीं। अपनी बात उसने प्रायः कुछ कही ही नहीं। पहले तो लक्ष्मीको शरम मालूम हुई, पर उसी वक्त उसे मालूम हुआ कि गप शप करने लायक उसके पास है ही क्या! मगर कल जैसे इस बहूके विरुद्ध उसका मन अप्रसन्न हो उठा था, आज वैसे ही उसे भारी तृप्ति सी मालूम हुई।

दीवारपर टँगी हुई कीमती घड़ीमें नाना प्रकारके बाजेके साथ तीन बजे। मझली बहू उठ खड़ी हुई और विनयके साथ बोली, "जीजी, अब चलती हूँ।"

लक्ष्मीने कुतूहलके साथ कहा, "बहिन, तुम्हारी क्या तीन बजे तक ही छुट्टी रहती है? लालाजी क्या घड़ी देखकर ठीक टाइमसे घर आते हैं?"

मझली बहूने कहा, "आज वे घर ही पर हैं।"

"फिर आज जल्दी काहेकी, और थोड़ा बैठो न।"

मझली बहू बैठी नहीं, लेकिन जानेके लिए पैर भी नहीं बढ़ा सकी। आहिस्तेसे बोली, "जीजी, आपने कितनी शिक्षा पाई है, कितना पढ़ा-लिखा है, और मैं ठहरी गँवई गाँवकी—"

"तुम्हारा मायका क्या गाँवमें है?"

"हाँ जीजी, बिलकुल देहातमें। बिना समझे कल क्या कहते क्या कह दिया हो,—पर असम्मान करनेके लिए नहीं, आप मुझे जैसी भी कसम खानेके लिए कहेंगी जीजी,—"

हरिलक्ष्मी दंग रह गई, बोली, "ऐसा क्यों कहती हो मझली बहू, तुमने तो कल ऐसी कोई भी बात नहीं कही।"

मझली बहूने इसके जवाबमें फिर कोई भी बात नहीं कही। परन्तु 'चल दी' कहकर जब वह फिरसे बिदा लेकर धीरे-धीरे जाने लगी, तब उसका कण्ठ-स्वर अकस्मात् कुछ और ही तरहका सुनाई दिया।

रातको शिवचरण जब घरमें आये, तब हरिलक्ष्मी चुपचाप लेटी हुई थी।

शरीर अपेक्षाकृत स्वस्थ, मन भी शान्त और प्रसन्न था।

शिवचरणने पूछा, "कैसी तबीयत है, बड़ी बहू?"

लक्ष्मी उठ बैठी, बोली, "अच्छी है।"

शिवचरणने कहा, "सबेरेकी बात मालूम हुई? बच्चूको बुलवाकर सबके सामने ऐसा झाड़ दिया है कि जनम-भर न भूलेगा। मैं बेलपुरका शिवचरण चौधरी हूँ! हाँ!"

हरिलक्ष्मी डर गई, बोली, "किसे जी?"

शिवचरणने कहा, "विपनाको बुलाकर कह दिया, तुम्हारी स्त्री मेरी स्त्रीके पास आकर शान दिखाके उसका अपमान कर गयी, इतनी हिमाकत उसकी! पाजी, नालायक, ओछे घरकी लड़की कहींकी! इसके बाल कटवाकर मुँह काला करके गधेपर चढ़ाकर गाँवसे निकाल बाहर कर सकता हूँ, जानता है!"

हरिलक्ष्मीका रोग-क्लिष्ट चेहरा एकबारगी सफेद फक पड़ गया; वह बोली, "तुम कहते क्या हो जी?"

शिवचरण अपनी छाती ठोककर गर्वके साथ कहने लगा, "इस गाँवमें जज समझो, मजिस्ट्रेट समझो, और दारोगा या पुलिस समझो,—सब कुछ यही बन्दा है! यही बन्दा! मारनेकी लकड़ी, जिलानेकी लकड़ी,—सब मेरी मुट्ठीमें है। तुम कहो तो कल ही अगर विपिनकी बहू आकर तुम्हारे पैर न दबाये, तो मैं लाटू चौधरीकी पैदाइश ही नहीं। मैं—"

इस तरह विपिनकी बहूको सबके सामने अपमानित और लांछित करनेके वर्णन और व्याख्यानमें लाटू चौधरीके पुत्रने अपशब्द और कुशब्दोंके व्ययमें कोई कसर नहीं रक्खी। और उसके सामने स्तब्ध निर्निमेष दृष्टिसे देखती हुई हरिलक्ष्मीका मन कहने लगा—धरती माता, फट पड़ो!

* * * *

२

दूसरी बारकी तरुणी भार्याके शरीरकी रक्षाके लिए शिवचरण सिर्फ एक अपनी देहके सिवा और सब कुछ दे सकता था। हरिलक्ष्मीकी वह देह बेलापुरमें न सम्हल सकी। डाक्टरोंने सलाह दी कि हवा-पानी बदलना चाहिए। शिवचरणने अपनी साढ़े-पन्द्रह आनेकी हैसियतके अनुसार बड़े ठाठ-बाटसे हवा बदलने जानेकी तैयारियाँ शुरू कर दीं। यात्राके शुभ मुहूर्तके

दिन गाँवके लोग टूट पड़े, सिर्फ आया नहीं तो एक विपिन और उसकी स्त्री। बाहर शिवचरण न कहने लायक बातें कहने लगा, और भीतर बड़ी बुआने उग्ररूप धारण कर लिया। बाहर भी 'स्थायी' में स्वर मिलानेवालोंकी कमी न रही ओर भीतर भी उसी तरह बुआके चीत्कारके बढ़ानेवाली स्त्रियाँ काफी जुट गईं। सिर्फ कुछ नहीं बोली तो एक हरिलक्ष्मी। मझली बहूके प्रति उसके क्षोभ और अभिमानकी मात्रा किसीसे भी कम न थी; वह मन ही मन कहने लगी—मेरे बर्बर पतिने कितना भी अन्याय क्यों न किया हो, मैंने खुद तो कुछ नहीं कहा! परन्तु घरकी ओर बाहरकी औरतें जो आज चिल्ला रही थीं, उनके साथ किसी भी तरह स्वरमें स्वर मिलानेमें उसे घृणा मालूम होने लगी। जाते समय पालकीका दरवाजा हटाकर लक्ष्मीने उत्सुक दृष्टिसे विपिनके टूटे फूटे घरकी खिड़कीकी ओर देखा, परन्तु किसीकी छाया तक उसे दिखाई नहीं दी।

काशीमें मकान ठीक कर लिया गया था। यहाँकी आब-हवाके गुणसे लक्ष्मीके नष्ट स्वास्थ्यकी पुनः प्राप्तिमें देर न हुई। चार महीने बाद जब वह लौटकर घर आई, तब उसके शरीरकी कान्ति देखकर स्त्रियोंकी गुप्त ईर्ष्याका ठिकाना न रहा।

हेमन्तऋतु आ रही है। दोहपरको मझली बहू बैठी अपने चिर-रुग्ण पतिके लिए एक ऊनी गुलूबन्द बुन रही थी. पास ही लड़का बैठा खेल रहा था। वह देखकर चिल्ला, उठा, "माँ, ताईजी!"

माँने हाथका काम जहाँका तहाँ छोड़कर चटपट उठकर नमस्कार किया और बैठने लिए आसन बिछा दिया। फिर खिले हुए चेहरेसे कहा, "तबीयत ठीक हो गई जीजी?"

लक्ष्मीने कहा, "हाँ, हो गई। मगर ठीक नहीं भी तो हो सकती थी। ऐसा भी तो हो सकता था कि फिर लौटकर ही न आती, फिर भी जाते समय तुमने जरा भी खोज-खबर नहीं ली: रास्ते-भर तुम्हारी खिड़कीकी तरफ देखती हुई गई, जरा एक बार छाया तक नहीं दिखाई दी। मरीज बहिन चली जा रही है, जरा मोह भी न हुआ, मझली बहू? ऐसी पत्थरकी बनी हो तुम?"

मझली बहूकी आँखें डबडबा आईं, पर मुँहसे कोई उत्तर न निकला।

लक्ष्मीने कहा "मुझसे और चाहे जो भी कुछ दोष हो, मझली बहू, मेरा मन तुम्हारी तरह कठोर नहीं है। भगवान् न करें, मगर ऐसे मौकेपर मैं तुम्हें बिना देखे न रह सकती थी।"

मझली बहूने इस आरोपका भी कुछ जवाब नहीं दिया, वह चुपचाप खड़ी रही।

लक्ष्मी इसके पहले यहाँ और कभी नहीं आई, पहले पहल आज ही उसने इस घरमें पैर रक्खा था। वह इधर उधर घूम-फिरकर सब कोठरियाँ देखने लगी। सौ सालका पुराना टूटा-फूटा मकान है, उसमें सिर्फ तीन कोठरियाँ किसी कदर रहने लायक हैं। दरिद्रताका आवास है,—असबाब तो नहींके बराबर है, दीवारोंका चूना झरता जा रहा है, मरम्मत करानेकी ताकत नहीं; फिर भी अनावश्यक गन्दापन कहीं जरा देखनेको भी नहीं। छोटे छोटे बिछौने हैं, पर साफ-सुथरे। दो चार देवी-देवताओंके चित्र टँगे हैं, और हैं मझली बहूके अपने हाथकी शिल्पकलाके कुछ नमूने। ज्यादातर ऊन और सूतके कामकी चीजें हैं। उनमें न तो कोई नौसिखुएके हाथका लाल चोंचवाला तोता ही है और न पंचरंगी बिल्लीकी सूरत। कीमती फ्रेममें जड़े हुए लाल नीले, बैंगनी सफेद आदि रंगोंके ऊनसे बुने हुए "वेलकम' 'स्वागतम्' या गलत उच्चारणके गीताके श्लोक भी नहीं। लक्ष्मीने आश्चर्यके साथ पूछा "यह किसकी तसबीर है मझली बहू? पहिचाना हुआ-सा चेहरा मालूम होता है?"

मझली-बहूने शरमाते हुए हँसकर कहा, "तिलक महाराजकी तसबीर देखदेखकर बिननेकी कोशिश की थी, जीजी, पर कुछ बनी नहीं।" यह कहते हुए उसने उँगली उठाकर सामनेकी दीवारपर टँगे हुए भारतके कौस्तुभ लोकमान्य तिलकका चित्र दिखा दिया।

लक्ष्मी बहुत देर तक उस तरफ देखती रही, फिर आहिस्तेसे बोली, "पहिचान नहीं सकी, यह मेरा ही कसूर है मझली बहू, तुम्हारा नहीं। मुझे सिखा दोगी बहिन? यह विद्या अगर सीख सकी, तो तुम्हें गुरू माननेमें मुझे कोई ऐतराज न होगा।"

मझली बहू हँसने लगी। उस दिन तीन-चार घंटे बाद लक्ष्मी जब लौटी, तब यह बात तय कर गई कि वह शिल्पकला सीखनेके लिए कलसे रोज आया करेगी।

आने भी लगी, परन्तु, दस-पन्द्रह दिनमें वह साफ समझ गई कि वह विद्या सिर्फ कठिन ही नहीं, बल्कि सीखनेमें भी काफी लम्बा समय लेगी। एक दिन लक्ष्मीने कहा, "मझली बहू, तुम मुझे खूब ध्यानसे नहीं सिखाती हो।"

मझली बहूने कहा, "इसमें तो काफी समय लगेगा, जीजी, इससे अच्छा है कि आप और और बुनावटें सीखें।"

लक्ष्मी भीतर ही भीतर गुस्सा हो गई, पर इसे छिपाते हुए उसने पूछा, "तुम्हें सीखनेमें कितने दिन लगे थे, मझली बहू?"

मझली बहूने जवाब दिया, " मुझे तो किसीने सिखाया नहीं, जीजी, अपनी कोशिशसे ही थोड़ा थोड़ा करके—"

लक्ष्मीने कहा, " इसीसे। नहीं तो, दूसरेसे सीखतीं तो तुम भी समयका हिसाब रखतीं। "

मुँहसे चाहे वह कुछ भी कहे, पर मन ही मन उसने बिना किसी सन्देहके अनुभव किया कि मेधा और तीक्ष्ण बुद्धिमें इस मझली बहूके सामने वह खड़ी नहीं हो सकती। आज उसके सीखनेका काम आगे बढ़ न सका, और समयसे बहुत पहले ही वह सुई-डोरा और पैटर्न लपेटकर घर चल दी। दूसरे दिन आई नहीं, और रोजके आनेमें यह पहले पहल नागा हुआ।

तीन-चार दिनके बाद फिर एक दिन हरिलक्ष्मी अपना सुई-डोरेका बॉक्स लेकर मझली बहूके घर पहुँची। मझली बहू तब अपने लड़केको रामायणसे तसबीरें दिखा दिखा कर उसकी कथा सुना रही थी,—लक्ष्मीको देखते ही उठकर उसने आसन बिछा दिया। उद्विग्न कंठसे पूछने लगी, " दो-तीन दिन आई नहीं, तबीयत ठीक नहीं थी क्या ?

लक्ष्मीने गंभीर होकर कहा, " नहीं तो, ऐसे ही पाँच-छै दिन नहीं, आ सकी। "

मझली बहूने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, " पाँच-छै दिन नहीं आई ? शायद इतने दिन होगये होंगे। पर आज दो घंटे ज्यादा रखकर नागोंकी कसर निकाल लेना चाहती हूँ। "

लक्ष्मीने कहा, " हूँ। लेकिन मान लो, मेरी तबीयत ही खराब हुई होती, मझली बहू, तुम्हें एक बार तो खबर लेनी चाहिए थी ? "

मझली बहूने शरमाते हुए कहा, " लेनी जरूर चाहिए थी पर घर-गिरस्तीके बहुत तरहके काम धन्धे हैं,—अकेली ठहरी, किसे भेजती बताइए ? पर मैं मानती हूँ, कसूर हुआ है जीजी। "

लक्ष्मी मन ही मन खुश हुई। पिछले कई दिन वह अत्यन्त अभिमानके कारण ही नहीं आई थी, और साथ ही, ' जाऊँगी जाऊँगी ' करके ही उसने दिन काटे हैं। इस मझली बहूके सिवा सिर्फ घरहीमें नहीं, बल्कि गाँव भरमें ऐसी कोई नहीं है जिससे जी खोलकर वह हिल-मिल सके।

लड़का अपने मनसे तसवीरें देख रहा था। हरिलक्ष्मीने उसे बुलाकर कहा " निखिल, यहाँ मेरे पास आना, बेटा ! "

उसके पास आनेपर लक्ष्मीने अपना बॉक्स खोलकर एक पतली सोनेकी जंजीर निकाल कर उसके गलेमें पहना दी, और कहा, "जाओ, खेलो जाकर।"

माँका चेहरा गम्भीर हो गया; उसने पूछा, "आपने जंजीर क्या उसे दे दी?"

लक्ष्मीने खिले हुए चेहरेसे जवाब दिया, "और नहीं तो?"

मझली बहूने कहा, "आपके देनेसे ही वह ले लेगा क्या?"

लक्ष्मी शर्मिन्दा हो उठी, बोली, "ताई क्या एक जंजीर भी नहीं दे सकती?"

मझली बहूने कहा, सो मैं नहीं जानती, जीजी, पर इतना जरूर जानती हूँ कि माँ होकर मैं लेने नहीं दे सकती।—निखिल, उसे उतारकर अपनी ताई-जीको दे दो।—जीजी, हम लोग गरीब हैं, पर भिखारी नहीं। यह बात नहीं कि कोई एक कीमती चीज अचानक मिले तो दोनों हाथ पसारकर लेने दौड़ें।"

लक्ष्मी दंग होकर बैठी रही। आज भी उसका मन कहने लगा—पृथिवी, फट पड़ो!

जाते समय उसने कहा, "लेकिन यह बात तुम्हारे जेठजीके कानों तक पहुँचेगी मझली बहू।"

मझली बहूने कहा, "उनकी बहुत-सी बातें मेरे कानों तक आती हैं, मेरी एक बात उनके कानों तक पहुँच जायगी तो कान अपवित्र नहीं हो जायँगे।"

लक्ष्मीने कहा, "अच्छी बात है, आजमा देखनेसे ही मालूम हो जायगा।"

फिर जरा ठहरकर बोली, खामखाह अपमानित करनेकी जरूरत नहीं थी, मझली बहू। मैं भी सजा देना जानती हूँ।"

मझली बहूने कहा, "यह आपकी नाराजीकी बात है। नहीं तो, मैंने आपका अपमान नहीं किया, बल्कि सिर्फ आपको अपने पतिका अपमान करने नहीं दिया,—इतना समझनेकी शिक्षा आपको मिली है।"

लक्ष्मीने कहा, "सो मिली है, नहीं मिली है, तो सिर्फ तुम जैसी गँवई-गाँवकी औरतोंसे झगड़नेकी शिक्षा।"

मझली बहूने इस कटूक्तिका जवाब नहीं दिया,—चुप बनी रही।

लक्ष्मी चलनेकी तैयारी करके बोली, "इस जंजीरकी कीमत चाहे कुछ भी हो, मैंने लड़केको प्यारसे ही दी थी,—तुम्हारे पतिका कष्ट दूर करनेके खयालसे क़तई नहीं। मझली बहू, आपने बस इतना ही सीख रक्खा है कि बड़े आदमी-मात्र ही गरीबोंका अपमान करते फिरते हैं,—वे प्यार भी कर सकते हैं, यह तुमने नहीं सीखा। सीखना जरूरी है।......मगर फिर जाकर

हाथ-पैर छूती मत फिरना।" इसके जवाबमें मझली बहूने सिर्फ जरा मुस-कराकर कहा, " नहीं जीजी, इसका डर तुम मत करो।"

* * * *

३

बाढ़के दबावसे मिट्टीका बाँध टूटना शुरू होता है, तब उसकी मामूली-सी शुरूआत देखकर कल्पना भी नहीं की जा सकती कि लगातार चलनेवाली पानीकी धारा इतने कम समयके अन्दर ही उस टूटनको इतना भयंकर और ऐसा विशाल बना देगी। ठीक यही बात हरिलक्ष्मीके बारेमें हुई। पतिके पास जब उसने विपिन और उसकी स्त्रीके विरुद्ध आरोपकी बातें खतम कीं, तब उसके परिणामकी कल्पना करके वह स्वयं ही डर गई। झूठ कहनेका उसका स्वभाव नहीं, और कहना भी चाहे तो उसकी शिक्षा और मर्यादा उसमें बाधक होती है; परन्तु इस बातको वह खुद भी न समझ पाई कि दुर्निवार जल-स्रोतकी तरह जो बातें झोंकमें उसके मुँहसे जबरदस्ती निकल गईं, इनमेंसे बहुत-सी सच्ची नहीं थीं, पर इस बातको समझना भी उसे बाकी न रहा कि उसकी गतिको रोकना उसके बूतेके बाहरकी बात थी। सिर्फ एक विषयमें वह ठीक इतना नहीं जानती थी, यानी अपने पतिके स्वभावसे वह पूरी तरह परिचित नहीं थी। उसके पतिका स्वभाव जैसा निष्ठुर था, वैसा ही प्रतिहिंसा-परायण और उतना ही बर्बर। इस बातको मानो वह जानता ही नहीं कि किसीको कष्ट देनेकी सीमा कहाँ तक है। आज शिवचरण उछला-कूदा नहीं, सब सुन-सुनाकर सिर्फ इतना बोला, "अच्छा पाँच-छह महीने बाद देखना। यह ठीक समझ लेना' दूसरी साल न आने पायेगी।"

अपमान और लांछनाकी आग हरिलक्ष्मीके हृदयमें जल ही रही थी,—इस बातको वह वास्तवमें चाहती थी कि विपिनकी स्त्रीको खूब अच्छी तरह सजा मिले। परन्तु शिवचरणके बाहर चले जानेपर उसके मुँहकी इस मामूली-सी बातको मन ही मन दुहरानेसे हरिलक्ष्मीके मनमें शान्ति नहीं मिली। उसे ऐसा मालूम होने लगा, जैसे कहीं कुछ बड़ी भारी खराबी हो गई है।

कुछ दिन बाद किसी बातचीतके सिलसिलेमें हरिलक्ष्मीने पतिसे मुसकराते हुए पूछा, " उन लोगोंके बारेमें कुछ किया-कराया है क्या ? "

" किन लोगोंके बारेमें ? "

"बिपिन लालाजीके बारेमें ?"

शिवचरणने निस्पृह-भावसे कहा, "क्या करता, और कर भी क्या सकता हूँ ? मैं तो मामूली-आदमी जो ठहरा।"

हरिलक्ष्मीने उद्विग्न होकर पूछा, "इसके मानी ?"

शिवचरणने कहा, "मझली बहू कहा करती है न, कि राज्य तो जेठजीका नहीं है,—अँग्रेज़ सरकारका है !"

हरिलक्ष्मीने कहा, "ऐसा कहा है क्या ? लेकिन, अच्छा—"

"अच्छा क्या ?"

स्त्रीने जरा सन्देह प्रकट करते हुए कहा, "लेकिन मझली बहू तो ठीक इस तरहकी बात कभी कहती नहीं। बहुत चालाक है क्या ? बहुतसे लोग शायद बात बढ़ा-चढ़ाकर चुगली भी कर दिया करते हैं।"

शिवचरणने कहा, "इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। मगर यह बात तो मैंने अपने कानोंसे सुनी है"

हरिलक्ष्मी इस बातपर विश्वास न कर सकी। पर उस समयके लिए पतिका मनोरंजन करनेके खयालसे सहसा गुस्सा दिखाती हुई बोली, "कहते क्या हो, इतना घमंड ! मुझे तो खैर जो कुछ कहा सो कहा, लेकिन जेठ लगते हो, तुम्हारी तो जरा इज्जत करनी चाहिए थी ?"

शिवचरणने कहा, "हिन्दुओंके घर ऐसा ही तो सब समझते हैं। पढ़ी-लिखी विद्वान् औरत ठहरी न ! इसीसे। पर मेरा अपमान करके कोई भी बच नहीं सकता। बाहर जरा काम है, मैं जा रहा हूँ।" इतना कहकर शिवचरण बाहर चल दिया। बातको जिस तरह हरिलक्ष्मी कहना चाहती थी. उस तरह न कह सकी, बल्कि वह उलटी हो गई, पतिके चले जानेपर रह रहाकर उसे इसी बातका खयाल होने लगा।

बाहरकी बैठकमें जाकर शिवचरणने विपिनको बुलवाकर कहा, पाँच-सात सालसे तुमसे कह रहा हूँ विपिन, कि अपने मवेशियोंको यहाँ से हटा लो, रातको सोना मेरे लिए हराम हो गया है,—सो क्या तुमने मेरी बात न सुनना ही तय कर लिया है ?"

विपिनने आश्चर्य-चकित होकर कहा, "कहाँ, मैंने तो एक बार भी नहीं सुना भइया ?"

शिवचरणने बड़ी आसानीके साथ कहा, "कमसे कम दस-बार तो मैंने

अपने मुँहसे कहा है तुमसे। तुम्हें याद न रहे हो कोई नुकसान नहीं, पर इतनी बड़ी जमींदारीका जो शासन करता है, उसकी बात भूल जानेसे काम नहीं चल सकता। खैर कुछ भी हो, तुम्हें खुद इस बातकी अकल होनी चाहिए थी कि दूसरेकी जगहमें कैसे इतने दिनोंतक मवेशी बाँधे जा सकते हैं? कल ही वहाँसे सब हटा हुट्टू लेना। मुझे फुरसत न मिलेगी, तुम्हें यह अन्तिम बार जता दिया मैंने।"

विपिनके मुँहसे ऐसे ही बात नहीं निकलती, उसपर अकस्मात् इस परम आश्चर्यकारी प्रस्तावके सामने वह एकबारगी अभिभूत हो गया। अपने बाबाके जमानेसे उस जगहको वह अपनी ही समझता आ रहा है। इतनी बड़ी झूठी बातका वह प्रतिवाद तक न कर सका कि वह दूसरेकी है, चुपचाप घर चला आया।"

उसकी स्त्रीने सब बातें सुनकर कहा, "पर राजकी अदालत तो खुली है।"

विपिन चुप रहा। वह चाहे जैसा भला आदमी क्यों न हो, इस बातको जानता था कि अँग्रेजी-राजकी अदालतका विशाल द्वार कितना भी खुला हुआ क्यों न हो, गरीबोंके घुसने लायक रास्ता उसमें जरा-सा भी खुला नहीं। आखिर वही हुआ जो होना था। दूसरे दिन बड़े बाबूके लोग आये और उन्होंने पुरानी टूटीफूटी गोशालाको तोड़कर उस जगहको लम्बी दीवारसे घेर दिया। विपिन थानेमें जाकर खबर दे आया, मगर आश्चर्य है कि शिवचरणकी पुरानी ईंटोंकी नई दीवार जब पूरी नहीं बन गई, तब तक एक भी लाल पगड़ी उसके पास नहीं फटकी। विपिनकी स्त्रीने हाथकी चूड़ियाँ बेचकर अदालतमें नालिश की पर उससे सिर्फ चूड़ियाँ ही चली गईं, हुआ कुछ नहीं।

रिश्तेमें विपिनकी बुआ लगनेवाली एक शुभाकांक्षिणीने इस विपत्तिमें विपिनकी स्त्रीको हरिलक्ष्मीके पास जानेकी सलाह दी थी, इसपर उसने शायद कह दिया था कि शेरके आगे हाथ जोड़कर खड़ा होनेसे फायदा क्या बुआजी? प्राण तो जो जानेके हैं सो जायँगे हीं, उसपरसे अपमान और हाथ लगेगा।

यह बात जब हरिलक्ष्मीके कानोंमें पड़ी, तो वह चुप रही,—किसी तरहका उत्तर देनेकी उसने कोशिश तक नहीं की।

काशीके हवा-पानी बदलकर आनेके बाद एक दिनके लिए भी उसकी तबीयत बिलकुल ठीक नहीं रही। इस घटनाके महीने-भर बाद उसे फिर बुखार आने लगा। कुछ दिन तक गाँवमें ही इलाज होता रहा, मगर कोई

फायदा नहीं हुआ। तब डाक्टरकी सलाहसे उसे फिर बाहर जानेके लिए तैयारियाँ करनी पड़ीं।

अनेक प्रकारके काम-काजोंके मारे अबकी शिवचरणका जाना न हो सका, वह गाँवमें ही रहा। जाते समय लक्ष्मी अपने पतिसे एक बात कहनेके लिए भीतर ही भीतर फड़कड़ाती रही, पर किसी तरह मुँह खोलकर उस आदमीके सामने वह बात कह नहीं सकी। उसे बार बार ऐसा मालूम होने लगा कि इनसे अनुरोध करना व्यर्थ है, इसके मानी ये नहीं समझ सकते।

* * * *

४

हरिलक्ष्मीके रोगग्रस्त शरीरको पूर्णतया नीरोग होनेमें अबकी कुछ लम्बा समय लगा। करीब एक सालके बाद वह बेलपुर वापस आई। वह सिर्फ जमींदारकी लाड़ली स्त्री ही तो नहीं, इतने बड़े घरकी मालिकिन भी तो है, इसलिए मुहल्लेकी औरतोंके झुंडके झुंड उसे देखने आये। जो सम्बन्धमें बड़ी थीं, उन लोगोंने आशीर्वाद दिया और जो छोटी थीं, उन्होंने पाँव छुए। आई नहीं तो सिर्फ एक विपिनकी स्त्री। इस बातको हरिलक्ष्मी जानती थी कि वह नहीं आयेगी। इस एक सालके अन्दर विपिनके घरके लोग किस तरह रहे; फौजदारी और दीवानी मामले जो उनके विरुद्ध चल रहे थे, उनका क्या नतीजा हुआ,—इनमेंसे कोई भी खबर उसने किसीसे जाननेकी कोशिश नहीं की। शिवचरण कभी घरपर और कभी पश्चिममें जाकर स्त्रीके साथ रह आया करता था। जब जब पतिसे भेंट हुई है तभी तब हरिलक्ष्मीके मनमें सबसे पहले इन लोगोंके बारेमें जाननेकी इच्छा हुई है, परन्तु फिर भी, एक दिन भी उसने पतिसे एक बात तक नहीं पूछी। पूछते हुए उसे डर लगता था। सोचती, इतने दिनोंमें शायद कुछ न कुछ निबटारा हो गया होगा, और शायद इनके क्रोधमें अब उतनी तेजी नहीं रही है। इस आशंकासे कि पूछ-ताछ करनेसे फिर कहीं पहलेका घाव ताजा न हो जाय, वह ऐसा भाव धारण किये रहती जैसे उन सब तुच्छ बातोंकी अब उसे याद ही नहीं। उधर शिवचरण भी अपनी तरफसे किसी दिन विपिनकी बात नहीं छेड़ता। इस बातको वह हरिलक्ष्मीसे छिपाये ही रखता कि अपनी स्त्रीके अपमानकी बात वह भूला नहीं है, बल्कि उसकी अनुपस्थितिमें इसका काफी

इन्तजाम उसने कर रक्खा है। उसके मनमें साध थी कि लक्ष्मी घर जाकर अपनी आँखोंसे ही सब देख-भाल ले और तब मारे आनन्दके फूली न समावे।

ज्यादा दिन चढ़नेके पहले ही बुआजीकी बारम्बार स्नेहपूर्ण ताड़नासे लक्ष्मी जब नहा धोकर निश्चित हुई, तो बुआजीने उत्कण्ठा प्रकट करते हुए कहा, "अभी तुम्हारा शरीर कमजोर ठहरा बहू-रानी, तुम अब नीचे न जाओ,—यहीं तुम्हारे लिए थाली परसवाकर मँगवाये देती हूँ।"

लक्ष्मीने आपत्ति करते हुए हँसकर कहा, "मेरा शरीर पहले जैसा ही ठीक हो गया है बुआजी, मैं नीचे रसोईमें जाकर खा आऊँगी, ऊपर सब ढोकर लानेकी जरूरत नहीं। चलो, नीचे ही चलती हूँ।"

बुआजीने 'शिबूकी तरफसे मनाई है' कहते हुए उसे रोक दिया। उनका हुक्म पाकर नौकरानी जगह साफ करके आसन बिछा गई। दूसरे ही क्षण मिसरानी भोजन लेकर हाजिर हुई। उसके थाली रखकर चले जानेपर लक्ष्मीने आसनपर बैठते हुए पूछा, "ये मिसरानीजी कौन-सी हैं? बुआजी पहले तो कभी नहीं देखा इन्हें?"

बुआजीने हँसकर कहा, "पहिचान न सकीं बहू-रानी, यह तो अपने विपिनकी बहू है।"

लक्ष्मी स्तब्ध होकर बैठी रह गई। मन ही मन समझ गई, उसे एकाएक आश्चर्यचकित कर देनेके लिए ही इतना षड्यंत्र करके इस तरह छिपा रखा गया था। कुछ देरमें अपनेको सम्हालकर वह जिज्ञासु मुखसे बुआजीकी तरफ देखने लगी।

बुआजीने कहा, "विपिन मर गया है, सुन लिया होगा?"

लक्ष्मीने कुछ भी नहीं सुना था; परन्तु अभी तुरन्त जो थाली परस गई है, यह बात उसकी तरफ देखते ही मालूम हो जाती है कि वह विधवा है। उसने सिर हिलाकर कह दिया, "हाँ"

बुआजीने बाकी घटनाका वर्णन करते हुए कहा, "जो कुछ बचा खुचा था खाक-धूल, सो सब मुकदमेबाजीमें स्वाहा करके विपिन तो मर गया। जब देखा कि बाकी रुपया चुकानेमें मकान भी हाथसे जाता है, तब हम ही लोगोंने सलाह दी,—'मझली बहू, साल दो-साल अपनी देहसे मेहनत करके रुपये चुका दे, जिससे तेरे लड़केके लिए कमसे कम बैठनेको एक जगह तो बची रहे'

लक्ष्मी अपने सफेद फक चेहरेसे, उसी तरह पलकहीन नेत्रोंसे, चुपचाप देखती रह गई। बुआजीने सहसा गलेका स्वर धीमा करके कहा, "फिर भी मैंने एक बार उसे अलग ले जाकर कहा था कि मझली बहू, जो होना था सो हो गया, अब उधार उधूर करके जैसे बने एक बार काशी जाकर बड़ी बहूके पैरों पड़ आ! लड़केको उनके पैरोंपर डालकर कहना, जीजी, इसका तो कोई कसूर नहीं, इसे बचाओ—"

बात करते करते बुआजी आँखोंसे आँसू पोंछती हुई बोलीं, "मगर बन्दी सिर नीचा किये मुँह बन्द करके बैठी रही;—उसने हाँ-ना कुछ जवाब तक नहीं दिया।"

हरिलक्ष्मी समझ गई, इसका साराका सारा अपराध मेरे ही सिरपर आ पड़ा है! उसके मुँहका अन्न-व्यंजन सबका सब कड़ुआ जहर हो गया, फिर वह एक गस्सा भी न निगल सकी। बुआजी किसी कामसे थोड़ी देरके लिए कमरेसे बाहर चली गई थीं, लौटकर जब उन्होंने लक्ष्मीकी थालीकी दशा देखी तो वे चंचल हो उठीं। जोरसे पुकारने लगीं, "विपिनकी बहू! विपिनकी बहू!"

विपिनकी बहूके दरवाजेके बाहर आकर खड़ी होते ही वे जोरसे बिगड़ पड़ीं। इसके कुछ ही क्षण पहले करुणाके मारे उनकी आँखोंमें जो आँसू भर आये थे, तुरंत ही न जाने वे कहाँ उड़ गये। तीक्ष्ण स्वरमें कहने लगीं, "ऐसी लापरवाहीसे काम करनेसे तो नहीं चल सकता, विपिनकी बहू! बहू-रानी एक दाना भी मुँहमें न दे सकी, ऐसी बुरी रसोई बनाई है!"

दरवाजेके बाहरसे इस तिरस्कारका कोई जवाब नहीं आया, परन्तु दूसरेके अपमानके भारसे लज्जा और वेदनाके मारे हरिलक्ष्मीका अपने कमरेमें भीतर सिर नीचा हो गया।

बुआजीने फिर कहा, "नौकरी करने चली हो, सो चीज-वस्त बिगाड़नेसे काम न चलेगा, बेटी! और भी पाँच जनीं जैसे काम करती हैं, तुम्हें भी वैसे ही करना चाहिए, सो कहे देती हूँ।"

विपिनकी स्त्रीने अबकी बार धीरेसे कहा, "जी-जानते कोशिश तो ऐसी ही करती हूँ बुआजी, आज मालूम नहीं कैसे क्या हो गया।" इतना कहकर उसके नीचे चले जानेपर, लक्ष्मीके उठकर खड़े होते ही बुआजी 'हाय-हाय' कर उठीं। लक्ष्मीने मुलायमियतके साथ कहा, "क्यों अफसोस कर रही हो बुआजी, मेरी तबीयत ठीक नहीं, इसीसे नहीं खा सकी। मझली बहूकी रसोईमें कोई खराबी नहीं थी।"

हाथ-मुँह धोकर हरिलक्ष्मी अपने एकान्त कमरेमें गई, तो उसका दम-सा घुटने लगा। सब तरहका अपमान सहते हुए भी विपिनकी स्त्रीका शायद इस घरमें नौकरी करना चल सकता है, पर आजके बाद गृहिणीपनका व्यर्थ श्रम करके उसका खुद इस घरमें कैसे निवाह हो सकता है? मझली बहूके लिए तो फिर भी एक सान्त्वना है,—बिना कसूरके दुःख सहनेकी सान्त्वना, परन्तु स्वयं लक्ष्मीके लिए कहाँ क्या बाकी रह गया!

रातको लक्ष्मी पतिके साथ बात क्या करती, उससे अच्छी तरह उनकी तरफ देखा भी न गया। आज उसके मुँहके एक शब्दसे विपिनकी स्त्रीका सब दुःख दूर हो सकता था, किन्तु निरुपाय अबला नारीसे जो आदमी इतना जबरदस्त बदला ले सकता है,—जिसके पौरुषमें यह बात खटकती तक नहीं, उससे भीख माँगनेकी हीनता स्वीकार करनेमें लक्ष्मीकी किसी कदर प्रवृत्ति नहीं हुई। शिवचरणने जरा हँसकर पूछा, "मझली बहूसे भेंट हुई? कहो कैसी रसोई बनाती है?

हरिलक्ष्मी जवाब न दे सकी। वह सोचने लगी, यही आदमी उसका पति है, और जिन्दगी-भर उसे इसीके साथ रहकर घर-गृहस्थी करनी होगी! सोचते सोचते उसका मन कहने लगा—पृथ्वी, फट पड़ो!

दूसरे दिन, सवेरे उठते ही लक्ष्मीने दासीके द्वारा बुआजीको कहला भेजा, उसे बुखार आ गया है, वह कुछ खायगी नहीं।

बुआजीने उसके कमरेमें आकर ज़िरह करते करते नाकमें दम कर दिया। उसके चेहरेके रुखसे और कण्ठ-स्वरसे उन्हें न जाने कैसा एक सन्देह-सा हो गया,—उनकी बहू-रानी शायद कुछ छिपानेकी कोशिश कर रही है। बोलीं, "लेकिन तुम्हें तो सचमुच बुखार आया नहीं, बहू-रानी?"

लक्ष्मीने सिर हिलाकर जोरसे कहा, "मुझे बुखार है, मैं कुछ न खाऊँगी।"

डाक्टरके आनेपर उसे बाहरसे ही विदा करते हुए लक्ष्मीने कहा, "आप तो जानते हैं, आपकी दवासे मुझे कुछ फायदा नहीं होता,—आप जाइए।"

शिवचरणने आकर बहुत-कुछ पूछा-ताछा, पर किसी भी बातका उसे उत्तर नहीं मिला।

और भी दो-तीन दिन जब इसी तरह बीत गये, तब घरके सभी लोग न जाने कैसी एक अज्ञात आशंकासे उद्विग्न हो उठे।

उस दिन, दिनके करीब तीसरे पहर, लक्ष्मी गुसल-खानेसे निकल कर चुपचाप

दवे पाँव आँगनके एक किनारेसे ऊपर जा रही थी, बुआजी रसोईघरके बरामदेसे उसे देखकर चिल्ला उठीं, "देखो बहू-रानी, विपिनकी बहूकी करतूत देखो ! एँ, मझली-बहू अन्तमें चोरी करनेपर उतर आई ?"

हरिलक्ष्मी पास जाकर खड़ी हो गई। मझली बहू जमीनपर चुपचाप नीचे मुँह किये बैठी थी, एक बरतनमें कुछ खाना अँगोछेसे ढका रखा था। बुआजीने उसे दिखाते हुए कहा, "तुम्हीं बताओ, बहू-रानी, इतना भात और तरकारी एक आदमी खा सकता है ? घर लिए जा रही है लड़केके लिए !— जब कि बार बार इसे मना कर दिया गया है। शिवचरणके कानमें भनक पड़नेपर फिर खैर नहीं, गरदन पकड़कर निकाल बाहर करेगा। बहू रानी, तुम मालिकिन हो, तुम्हीं इसका न्याय कर दो।" इतना कहकर बुआजीने मानो अपना एक कर्तव्य समाप्त करके दम लिया।

बुआजीका चीत्कार सुनकर घरके नौकर, नौकरानी, और भी लोग-बाग जो जहाँ थे सब आकर इकट्ठे हो गये और लगे तमाशा देखने। उन सबके बीचमें बैठी थी उस घरकी मझली बहू और उसकी मालिकिन यानी इस घरकी गृहिणी।

लक्ष्मीको इस बातका स्वप्नमें भी खयाल न था कि इतनी छोटी,—इतनी तुच्छ चीजके बारेमें इतना बड़ा भद्दा काण्ड हो सकता है, अभियोगका जवाब तो क्या देती, मारे अपमान, अभिमान और लज्जाके वह मुँह भी न उठा सकी। लज्जा और किसीके लिए नहीं, स्वयं अपने ही तईं थी। आँखोंसे उसके आँसू गिरने लगे। उसे मालूम होने लगा, इतने लोगोंके सामने वही मानो पकड़ी गई है, और विपिनकी बहू उसका विचार करने बैठी है।

दो-तीन मिनट तक इसी तरह रहकर सहसा जोरकी कोशिशसे अपनेको सम्हालकर लक्ष्मीने कहा, "बुआजी, तुम सब लोग यहाँसे चले जाओ।"

उसका इशारा पाते ही सब जब चले गये, तब लक्ष्मी धीरेसे मझली बहूके पास जाकर बैठ गई। फिर हाथसे उसका मुँह उठाकर देखा, उसकी भी दोनों आँखोंसे टप टप आँसू गिर रहे थे। लक्ष्मी बोली, "मझली बहू, मैं तुम्हारी जीजी हूँ—" इतना कहकर उसने अपने आँचलसे उसके आँसू पोंछ दिये।

अभागिनीका स्वर्ग

ठाकुरदास मुखर्जीकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रीका सात दिनके बुखारके बाद देहान्त हो गया। वृद्ध मुखर्जी महाशयने धानके रोजगारमें काफी पैसा कमाया था। उनके चार लड़के, तीन लड़कियाँ और उनके भी बालबच्चे मौजूद थे। उसपर दामाद, अड़ोसी-पड़ोसी, नौकर-चाकर,—सबके आ जानेसे एक उत्सव-सा हो गया था। गाँव भरके लोग धूमधामके साथ निकलनेवाली अरथीको देखने आये। लड़कियोंने रोते रोते माँके दोनों पाँवोंपर खूब गाढ़ा करके महावर और माथेपर सिन्दूर लगा दिया। बहुओंने ललाटपर चन्दन लगाकर बहुमूल्य वस्त्रोंसे सासको ढक दिया और आँचलसे उनकी अन्तिम पदधूलि लेकर अपने माथेसे लगाई। पुष्प, पत्र, सुगन्ध, माला और कलरवसे मालूम ही न पड़ा कि इस घरमें कोई शोककी घटना हुई है,—ऐसा मालूम हुआ जैसे बड़े घरकी गृहिणी पचास वर्ष बाद फिर एक बार नये ढँगसे अपने पतिके घर विदा हो रही है। वृद्ध मुखर्जी महाशय शान्त मुखसे अपनी चिर-संगिनीको अन्तिम विदा देकर छिपे छिपे आँखोंके आँसू पोंछकर शोकार्त कन्याओं और पुत्र-वधुओंको सान्त्वना देने लगे। प्रबल हरि-ध्वनिसे प्रभातके आकाशको आलोड़ित करता हुआ साराका सारा गाँव अरथीके साथ हो लिया। और भी एक स्त्री जरा दूर रहकर इस दलके साथ हो ली, वह थी कंगालीकी माँ। वह अपनी कुटियाके आँगनमें फले हुए कुछ बैंगन तोड़कर हाटमें बेचने जा रही थी, इस दृश्यको देखकर उससे फिर हिला न गया। उसका हाट जाना रह गया, उसके आँचलमें बँधे बैंगन जैसेके तैसे रह गये,—वह अपने आँसू पोंछती हुई सबके पीछे पीछे श्मशानमें जा उपस्थित हुई। गाँवके बाहर गरुड़ नदीके किनारे श्मशान है, वहाँ पहलेसे ही लकड़ीके बोझे, चन्दनके टुकड़े, घी, मधु, धूप, राल आदि उपकरण संचित हो चुके थे। कंगालीकी माँ छोटी जातकी थी, दूलेकी लड़की होनेसे

उसे जानेकी हिम्मत न हुई, दूरसे ही ऊँची ढेरीपर खड़ी खड़ी वह अन्त्येष्टि-क्रिया, शुरूसे लेकर आखिर तक, उत्सुक आग्रहके साथ टकटकी बाँधे देखने लगी।

प्रशस्त और पर्याप्त चितापर जब शव रखा गया, तब उसके महावरसे रंगे दोनों पैरोंको देखकर उसकी दोनों आँखें तृप्त हो गईं। उसका मन होने लगा कि दौड़कर पहुँचे और पाँवोंसे एक बूँद महावर पोंछकर माथेसे लगा ले। अनेक कंठोंकी हरि-ध्वनिके साथ जब पुत्रके हाथकी मंत्रपूत अग्निसे चिता जलने लगी, तब उसकी आँखोंसे आसुँओंकी झड़ी बँध गई। मन ही मन वह बार बार कहने लगी, "भाग्यवती मा, तुम सुरगको जा रही हो,—मुझे आशीर्वाद करती जाओ जिससे मैं भी इसी तरह कंगालीके हाथकी आग पा सकूँ। लड़केके हाथकी आग!—यह तो कोई मामूली बात नहीं। पति, पुत्र, कन्या, नाती, नातिनी, दास, दासी, परिजन,—सबके सामने यह जो स्वर्गारोहण हो रहा है, इसे देखकर उसकी छाती, फटने लगी,—इस सौभाग्यकी मानो वह कोई गिनती ही न कर सकी। सद्यः प्रज्वलित चिताका लगातार उठता हुआ जोरका धुआँ नीले रंगकी छाया फेंकता घूम घूम कर आकाशकी ओर उड़ता जा रहा था,—कंगालीकी माँको उसीमें एक छोटे रथकी मूर्ति मानो स्पष्ट दिखाई दी। उस रथके चारों तरफ कितने ही चित्र अंकित हैं, उसकी चोटीपर तरह-तरहकी लताएँ और पत्तियाँ लिपटी हुई हैं। उसके भीतर न जाने कौन बैठा है, चेहरा उसका पहिचाननेमें नहीं आता, परन्तु माथेपर उसके सिन्दूरकी रेखा और पाँवोंमें महावर लगा हुआ है। ऊपरकी ओर देखते देखते कंगालीकी माँकी आँखोंसे आसुँओंकी धारा बह रही थी, इतनेमें एक चौदह-पन्द्रह सालका लड़का उसकी धोतीका पल्ला खींचता हुआ बोला, "तू यहाँ खड़ी है अम्मा, रोटी नहीं बनायेगी?"

माँ चौंकी और उसकी तरफ मुड़कर देखा, कहा, "बनाऊँगी रे?" इसके बाद सहसा ऊपरकी ओर उँगली दिखाकर व्यग्र स्वरसे कहा, "देख देख बेटा! बाम्हन माँजी रथमें चढ़के सुरगको जा रही हैं।"

लड़केने आश्चर्यके साथ मुँह उठाकर कहा, "कहाँ?" कुछ देर तक अच्छी तरह देख-भालकर वह फिर बोला, "तू पगली हो गई है माँ! वह तो धुआँ है! इसके बाद वह गुस्सा होकर बोला, "दोपहर तो हो गया, मुझे भूख नहीं लगती होगी क्या?" और साथ साथ माँकी आँखोंमें आँसू देखकर बोला, "बाम्हनी मा मरी है, तू क्यों रोये मरती है माँ?"

कंगालीकी माको अब होश आया। दूसरेके लिए श्मशानमें खड़ी होकर इस

तरह आँसू बहानेसे वह स्वयं मन ही मन लज्जित हुई, यहाँ तक कि लड़केके अकल्याणकी आशंकासे दूसरे ही क्षण आँखें पोंछकर जरा हँसनेकी कोशिश करती हुई बोली, "रोऊँगी क्यों रे,—आँखोंमें धुआँ लग गया था इसीसे!"

"हाँ हाँ धुआँ तो लगा ही है! तू रो रही थी बिलकुल!"

माँने फिर कोई प्रतिवाद नहीं किया। लड़केका हाथ पकड़कर घाटपर गई, खुद भी नहाई और कंगालीको भी नहलाया, फिर घर लौट गई। श्मशानसंस्कारको अन्त तक देखना उसके भाग्यमें न बदा था।

२

सन्तानके नामकरणके समय माता-पिताकी मूर्खतापर विधाता-पुरुष बहुधा अन्तरीक्षमें सिर्फ हँसकर ही सन्तुष्ट नहीं होते, बल्कि तीव्र प्रतिवाद भी नहीं करते हैं। इसीसे उनका सारा जीवन उनके अपने नामको ही मानो मरते दम तक चिढ़ाता रहता है। कंगालीकी माँके जीवनको विधाताके इस परिहासकी बलासे छुटकारा मिल गया था। उसे पैदा करनेके बाद ही माँ उसकी मर गई थी, लिहाजा बापने गुस्सेमें आकर उसका नाम रख दिया अभागिनी। माँ नहीं रही, लिहाजा बाप नदीमें मछली पकड़ता फिरता था। उसमें उसने न तो दिन देखा न रात। फिर भी कैसे वह छोटी-सी अभागिनी किसी दिन कंगालीकी माँ होनेके लिए जिन्दा बची रही, सचमुच यह एक आश्चर्यकी बात है। जिसके साथ उसका ब्याह हुआ, उसका नामथा रसिक बाघ। उस बाघकी एक और बाघिन थी, उसे लेकर वह दूसरे गाँवको चला गया; और अभागिनी अपने अभाग्य और बच्चे कंगालीको लेकर उसी गाँवमें पड़ी रही।

उसका वह कंगाली आज बड़ा हो गया है और पन्द्रहीमें पड़ा है। फिलहाल उसने बेंतका काम सीखना शुरू कर दिया है। अभागिनीको आशा होने लगी है कि और भी साल-भर तक अगर वह अभाग्यके साथ जूझ सकी, तो उसका दुःख दूर हो जायगा। उसका यह दुःख क्या और कैसा है, सो तो जो देखनेवाले हैं, उनके सिवा और कोई भी नहीं जानता।

कंगाली तालाबसे अचवन करके आया तो देखा कि उसकी थालीका बचा हुआ सामान माँ एक बरतनमें ढककर रख रही है उसने आश्चर्यके साथ पूछा, "तैंने नहीं खाया माँ?"

"बहुत अबेर हो गई है बेटा, अब भूख नहीं रही।"

लड़केने विश्वास नहीं किया, बोला, "हाँ, भूख तो जरूर नही होगी। कहाँ, देखू तेरी हँड़िया!"

इस छलसे बहुत दिनोंसे माँ उसे धोखा देती आई है, इसीसे आज उसने हँडिया देखके छोड़ी। उसमें और एककर लायक भात था। तब वह प्रसन्न मुखसे माँकी गोदीमें जाकर बैठ गया। इस उमरके लड़के साधारणतः ऐसा नहीं करते, किन्तु बचपनहीसे अकसर बीमार रहनेके कारण माँकी गोदके सिवा बाहरके साथी-संगियोंके साथ खेलनेका उसे मौका ही नहीं मिला।

यहीं बैठकर उसे खेल-कूदका शौक मिटाना पड़ा है। एक हाथ माँके गलेमें डालकर उसके मुँहपर अपना मुँह रखते ही कंगाली चौक पड़ा, बोला, "अम्मा, तेरी देह तो गरम है, क्यों तू घाममें खड़ी खड़ी मुरदा जलना देख रही थी? क्यों फिर नहाई जाकर? मुरदा जलना क्या तैंने—"

माँने चटसे लड़केका मुँह दाबकर कहा, "छिः बेटा, 'मुरदा जलना' नहीं कहते, पाप लगता है। सती-लक्ष्मी माँ महारानी रथमें चढ़के सुरगको गई हैं!"

लड़केने सन्देह करके कहा, "तेरे पास वही एक बात है। रथमें चढ़कर कोई कहीं सुरगको जाता है!"

माँने कहा, "मैंने जो अपनी आँखोंसे देखा बेटा, बाम्हन-माजी रथमें बैठी थीं। उनके लाल लाल पाँव सबोंने देखे हैं रे!"

"सबोंने देखे?"

"हाँ! सबोंने देखे।"

कंगाली माँकी छातीसे लगकर सोचने लगा। माँका विश्वास करना ही उसका अभ्यास था, विश्वास करना ही उसने बचपनसे सीखा है। उसकी माँ जब कह रही है, सबोंने अपनी आँखोंसे इतनी बड़ी घटना देखी है, तब अविश्वास करनेकी और कुछ बात ही नहीं रह गई। थोड़ी देर बाद उसने आहिस्ते आहिस्ते कहा, "तब तो तू भी माँ सुरगको जायगी? बिन्दोकी माँ उस दिन राखालकी बुआसे कह रही थी, कंगालीकी माँ जैसी सती-लक्ष्मी दूलोंमें और कोई नहीं है।"

कंगालीकी माँ चुप बनी रही। कंगाली उसी तरह धीरे धीरे कहने लगा, "बप्पूने जब तेरेको छोड़ दिया था, तब कितने जनोंने निकाह करनेके लिए तेरी खुशामद की थी। लेकिन तैंने कहा—नहीं! तू बोली—कंगाली बना रहेगा तो मेरा दुःख दूर हो जायगा, फिरसे निकाह क्यों करूँ? अच्छा अम्मा, तू निकाह करती, तो मैं कहाँ जाता? मैं शायद भूखों मर जाता?"

माँने लड़केको दोनों हाथोंसे छातीसे चिपका लिया। वास्तवमें, उस दिन उसे ऐसी सलाह कम लोगोंने नहीं दी, और जब वह इसके लिए किसी भी तरह राजी नहीं हुई, तब ऊधमबाजी भी कम नहीं हुई। उस बातको याद करके अभागिनीकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। लड़केने हाथसे माँके आँसू पोंछते हुए कहा, "कँथड़ी बिछा दूँ माँ, सोयेगी?"

माँ चुप रही। कंगालीने चटाई बिछाई, उसपर कँथड़ी बिछा दी, मचानके ऊपरसे वह छोटा तकिया उठा लाया, और माँका हाथ पकड़कर उसपर सुलाने ले चला, तब माँने कहा, "कंगाली आज तू कामपर मत जा, रहने दे।"

कामपर नागा करनेका प्रस्ताव कंगालीको बहुत ही अच्छा लगा, मगर बोला, "जल-पानीके दो पैसे फिर नहीं मिलेंगे माँ!"

"मत मिलने दे,—आ, तुझे कहानी सुनाऊँ।"

अधिक लोभ न दिखाना पड़ा, कंगाली उसी क्षण माँकी छातीसे लगकर पड़ रहा, और बोला, "सुना माँ, राजकुमार, कोतवालका बेटा और वह पक्षीराज घोड़ा—"

अभागिनीने राजकुमार, कोतवाल-पुत्र और पक्षीराज घोड़ेसे कहानी शुरू कर दी। ये सब उसकी बहुत दिनोंकी सुनी हुई और बहुत दिनोंकी कही हुई कहानियाँ थीं। परन्तु कुछ ही क्षण बाद कहाँ गया उसका राजकुमार और कहाँ गया कोतवालका बेटा,—उसने ऐसी कहानी शुरू कर दी, जो दूसरेसे सीखी हुई नहीं थी,—उसकी अपनी रचना थी।

जैसे जैसे उसका बुखार बढ़ने लगा, माथेमें गरम खूनका दौरा ज्यों ज्यों जोरका होने लगा, त्यों त्यों मानो वह नई नई कहानियोंका इन्द्रजाल रचती चली गई। भय, विस्मय और पुलकके मारे मानो वह जोरसे माँके गलेसे लगकर उसकी छातीमें समा जाने लगा।

बाहर दिन डूब चुका था। सूर्यके अस्त होते ही संध्याकी म्लान छाया धीरे धीरे गाढ़ी होकर चारों ओर व्याप्त हो गई। परन्तु घरके भीतर आज दीआ नहीं जला, गृहस्थका अन्तिम कर्तव्य पालन करनेके लिए कोई नहीं उठा। निबिड़ अन्धकारमें सिर्फ रुग्ण माताका बाधाहीन गुंजन निस्तब्ध पुत्रके कानोंमें सुधा बरसाता चल गया। वही श्मशान और श्मशान-यात्राकी कहानी थी वह। वही रथ, वही महावरसे रंगे लाल लाल पाँव, वही उसका स्वर्ग जाना। किस तरह शोक-विह्वल पति अन्तिम पद धूली देकर रोते हुए विदा हुए, किस तरह हरिध्वनिके साथ लड़के माँकी अरथी उठा ले गये, और फिर

उसके बाद सन्तानके हाथसे आग !—" वह आग तो आग नहीं थी बेटा, वह तो हरिका रूप था। उसका आकाश-भरा धुआँ नहीं था बेटा, वह तो सुरगका रथ था। कंगालीचरण, बेटा मेरा!"

क्यों माँ?"

"तेरे हाथके आग अगर पा गई बेटा, तो वाम्हन-माकी तरह मैं भी सुरगको जा सकूँगी!"

कंगालीने अस्फुट स्वरमें सिर्फ इतना कहा, "हट,—ऐसा नहीं कहते!"

माँ शायद उसकी बात सुन भी न सकी। वह गरम साँस छोड़ती हुई कहने लगी, "तब छोटी जात होनेसे कोई नफरत न कर सकेगा,—गरीब दुःखी होनेसे फिर कोई रोक-टोक न सकेगा। ओफ! लड़केके हाथकी आग,—रथको तो आना ही पड़ेगा!"

लड़का माँके मुँहपर मुँह रखकर रुँधे हुए गलेसे बोला, "ऐसा मत बोल माँ, ऐसा मत बोल, मुझे बड़ा डर लगता है।"

माँने कहा, "और सुन कंगाली, तू अपने बप्पूको एक बार पकड़ लायेगा, वे उसी तरह अपने पाँवकी धूल मेरे माथेसे लगाकर मुझे विदा करेंगे। उसी तरह पाँवोंमें महावर, माथेपर सिन्दूर.—पर यह सब कौन करेगा बेटा? तू करेगा न रे कंगाली! तू ही मेरा लड़का है, तू ही मेरी लड़की है, तू ही मेरा सब है।" कहते कहते उसने लड़केको अपनी छातीसे चुपटा लिया।

३

अभागिनीके जीवन-नाटकका अन्तिम अंक समाप्त होने जा रहा है। उसका विस्तार ज्यादा नहीं, थोड़ा ही था। शायद अब तक तीस ही साल पार हुए होंगे या न भी हुए हों। समाप्त भी हुआ वैसे ही मामूली तौरपर। गाँवमें वैद्य कोई न था, दूसरे गाँवमें एक रहते थे। कंगाली जाकर रोया-धोया, हाथ जोड़े, पाँव पड़ा, और अन्तमें उसने एक लोटा गिरवी रखकर उन्हें एक रुपया सलामी दी; मगर फिर भी वे आये नहीं, उन्होंने चार-पाँच गोलियाँ देकर टरका दिया। और उनका खटराग कितना! खरल, शहद, अदरकका सत तुलसीके पत्तोंका रस! कंगालीकी माँने लड़केपर गुस्सा होकर कहा, "क्यों तू मुझसे पूछे बिना लोटा-गिरवी रख आया बेटा!" इसके बाद उसने गोलियाँ हाथमें लेकर सिरसे लगाईं और चूल्हेमें डाल दीं। बोली, "अच्छी हूँगी तो ऐसे ही हो जाऊँगी,—बाग्दी-दूलोंके घर दवा खाकर कभी कोई नहीं जीता।"

दो-तीन दिन इसी तरह बीत गये। पड़ोसी लोग खबर पाकर देखने आये; और अपने जाने हुए मुष्टि-योग,—हरिनके सींगका घिसा हुआ पानी, गट्टी कौड़ी जलाकर शहदके साथ चटाना इत्यादि अव्यर्थ औषधोंका पता देकर, सब अपने अपने कामसे चले गये। बच्चा कंगाली जब घबरा-सा गया तो माँने उसे अपने पास खींचकर कहा, "बैदकी दवासे तो कुछ हुआ नहीं बेटा, इन दवाओंसे क्या होगा? मैं ऐसे ही अच्छी हो जाऊँगी।"

कंगालीने रोते रोते कहा, "तैंने गोलियाँ तो खाईं नहीं माँ, चूल्हेमें फेंक दी थीं। ऐसे ही क्या कोई अच्छा होता है?"

"मैं अच्छी हो जाऊगी। अच्छा, तू थोड़ा-सा भात-आत बनाकर खा तो ले देखूँ, मैं देखती रहूँगी।"

कंगाली अपने जीवनमें आज पहले पहल अपटु हाथोंसे भात बनाने लगा। न तो वह अच्छी तरह माड़ ही निकाल सका, और न ठीकसे पसारकर खा ही सका। चूल्हा तक तो ठीकसे जला नहीं, उफानका पानी पड़ जानेसे धुआँ हुआ सो अलग। भात परसनेमें चारों तरफ बिखर गया। माँकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने खुद एक बार उठनेकी कोशिश की, पर वह सिर सीधा न कर सकी, बिछौनेपर गिर पड़ी। खा चुकनेपर लड़केको अपने पास बुलाकर उसे कैसे बनाया और परोसा जाता है, इसका विधिवत् उपदेश देते देते उसका क्षीण कण्ठ सहसा रुक गया, और आँखोंसे बराबर आँसूकी धार बहने लगी।

गाँवका ईश्वर नाई नाड़ी देखना जानता था। दूसरे दिन वह आया और हाथ देखकर उसीके सामने चेहरा गम्भीर बनाकर, एक दीर्घ निःश्वास लेकर, और अन्तमें सिर हिलाकर उठकर चल दिया। कंगालीकी माँ इसका अर्थ समझ गई, मगर उसे जरा भी डर नहीं हुआ। सबके चले जानेपर उसने लड़केसे कहा, "एक बार उन्हें बुला ला सकता है, बेटा?"

"किसको माँ?"

"वही रे,—उस गाँवको जो चले गये हैं।"

कंगाली समझकर बोला "बप्पूको?"

अभागिनी चुप रही।

कंगालीने कहा, "वे क्यों आने लगे माँ?"

अभागिनीको खुद ही काफी सन्देह था, फिर भी उसने धीरे-से कहा, "जाकर कहना माँ सिर्फ तुम्हारे पैरोंकी जरा धूल चाहती है।"

वह उसी वक्त जानेको तैयार हो गया, माँने फिर उसका हाथ पकड़कर कहा, "जरा रोना-धोना बेटा कहना,—माँ जा रही है।"

जरा ठहरकर फिर बोली, "उधरसे लौटते वक्त नाइन भाभीसे थोड़ा-सा महावर लेते आना बेटा। मेरा नाम लेनेसे ही वह दे देगी। मुझसे बड़ा मेल मानती है वह।"

मेल उससे बहुतेरी मानती हैं, इसमें शक नहीं।

बुखार होनेके बादसे कंगालीने अपनी माँके मुँहके इन सब चीजोंकी बात इतनी बार और इतनी तरहसे सुनी है कि वह वहीं से काँपता हुआ रवाना हुआ।

४

दूसरे दिन रसिक दूले समयानुसार जब आ पहुँचा, तब अभागिनीको उतना होश नहीं था। मुँहपर मृत्युकी छाया पड़ चुकी है, आँखोंकी दृष्टि इस संसारका काम पूरा करके न जाने कहाँ किस अनजान देशको चली गई है। कंगलीने रोते हुए कहा, "अम्मा री! बप्पू आये हैं,—पाँवकी धूल लेगी न।"

माँ शायद समझी, हो या न भी समझी हो, या हो सकता है कि उसकी गहराई तक संचित वासनाने संस्कारके समान उसको ढकी हुई चेतनापर चोट पहुँचाई हो। इस मृत्यु-पथके यात्रीने अपना कमजोर काँपता हुआ हाथ बिस्तरके बाहर निकालकर पसार दिया।

रसिक हतबुद्धिकी तरह खड़ा रहा। यह उसकी कल्पनासे बाहरकी बात थी कि संसारमें उसके भी पाँवकी धूलकी जरूरत हो सकती है,—उसे भी कोई चाह सकता है। बिन्दोकी बुआ खड़ी थी, उसने कहा, "दो बेटा, जरा पाँवकी धूल हाथसे लगा दो।"

रसिक आगे बढ़ आया। अपने जीवनमें उसने कभी जिस स्त्रीसे प्रेम नहीं किया, अशन-वसन नहीं दिया; कोई खोज-खबर नहीं ली, मरते समय उसे सिर्फ जरा पाँवकी धूल देते हुए वह रो पड़ा।"

राखालकी माँने कहा, "ऐसी सती-लक्ष्मी स्त्री बाम्हन-कायथोंके घर न पैदा होकर दूलोंके घर क्यों पैदा हुई! अब उसकी जरा गति सुधार दो बेटा,—कंगालीके हाथकी आगके लोभसे बेचारीने प्राण दे दिये!"

अभागिनीके अभाग्यके देवताने अगोचरमें बैठकर क्या सोचा, सो नहीं मालूम, परन्तु बच्चा कंगालीकी छातीमें जाकर यह बात तीर-सी चुभ गई।

उस दिनका दिन तो कट गया, पहली रात भी कट गई, पर सबेरेके लिए कंगालीकी माँ प्रतीक्षा न कर सकी। मालूम नहीं, इतनी छोटी जातके लिए स्वर्गके रथकी व्यवस्था है या नहीं, अथवा अँधेरेमें पैदल ही उन्हें

रवाना होना पड़ता है, परन्तु इतना समझमें आ गया कि रात खतम होनेके पहले ही वह इस दुनियाको छोड़कर चली गई है।

झोंपड़ीके सामनेके आँगनमें एक वेलका पेड़ था। कहींसे कुल्हाड़ी माँगके रसिकने उसपर चलाई होगी या न भी चलाई, न जाने कहाँसे जमींदारके दरबारने आकर उसके गालपर तड़से एक थप्पड़ जड़ दिया और कुल्हाड़ी छीनकर कहा, "साला कहींका, यह क्या तेरे पेड़ है जो काट रहा है?"

रसिक गालपर हाथ फेरने लगा। कंगाली रुआसा-सा होकर बोला, "वाह, यह तो मेरी अम्माके हाथका रोपा हुआ पेड़ है, दरबानजी! बप्पूको तुमने झूठमूठको क्यों मार दिया?"

दरबानने उसे भी एक न सुनने लायक गाली देकर मारना चाहा, पर वह अपनी मरी हुई अम्माके पास बैठा था, इसलिए छूतके डरसे उसने उसे छुआ नहीं। शोर-गुलसे लोगोंकी भीड़ जमा हो गई। किसीने भी इस बातसे इनकार नहीं किया कि विना पूछे रसिकका पेड़ काटना अच्छा नहीं हुआ। वे ही फिर दरबान साहबके हाथ जोड़ने और पैरों पड़ने लगे कि वे मेहरवानी करके हुकम दे दें। कारण, बीमारीके समय जोभी कोई देखने आया था, उसीसे कंगालीकी माँने अपनी अन्तिम अभिलाषा कह दी थी।

मगर दरबान इन सब बातोंमें आनेवाला नहीं था, उसने हाथ-मुँह हिलाते हुए कहा, "यह सब चालाकी हमारे सामने नहीं चल सकती।"

जमींदार स्थानीय रहनेवाले नहीं थे; गाँवमें उनकी एक कचहरी है, गुमास्ता अधर राय उसके मालिक हैं। लोग जिस समय दरबानसे व्यर्थ अनुनय-विनय कर रहे थे, कंगाली उसी समय बेतहाशा दौड़ता हुआ एकदम कचहरीमें जा पहुँचा। उसने लोगोंके मुँहसे सुन रखा था,—पियादे लोग घूस लेते हैं, इसलिए उसे निश्चय विश्वास था कि इतने बड़े असंगत अत्याचारकी बात अगर वह मालिकके कान तक पहुँचा दे, तो इसका कोई प्रतीकार हुए बिना रह नहीं सकता। हाय रे अनभिज्ञ! बंगालके जमींदार और उनके कर्मचारियोंको वह पहचानता न था। सद्य-मातृहीन बालक शोक और उत्तेजनासे उद्भ्रान्त होकर एक बारगी ऊपर चढ़ता चला आया था,— अधर राय हाल ही संध्या-पूजा और थोड़ा-सा जलपान करके बाहर आकर बैठे थे, विस्मित और क्रुद्ध होकर बोले, "कौन है?"

"मैं हूँ कंगाली। दरबानजीने मेरे बापको मारा है।"

"अच्छा किया है। हरामजादेने लगान न दी होगी?"

कंगालीने कहा, "नहीं बाबू साब, बप्पू पेड़ काट रहे थे,—मेरी अम्मा मर गई है,—" कहते कहते वह अपनी रुआईको रोक न सका, रो दिया !

सबेरे ही इस तरहकी रोआ पोंकीसे अधर बहुत ही नाराज हो उठे। छोकरा मुर्दा छूकर आया है, मालूम नहीं, यहाँका भी कुछ छू छा दिया होगा कड़ककर बोले, "मा मरी है, तो जा, नीचे, जाकर खड़ा हो। अरे कौन है रे, यहाँ जरा गोबर-पानी डाल दे। किस जातका लड़का है तू?"

कंगालीने डरके मारे नीचे आँगनमें उतरकर कहा, "हम लोग दूले हैं।"

अधरने कहा, "दूले! अरे, दुलेके मुर्देके लिए लकड़ीकी क्या जरूरत है रे?"

कंगालीने कहा, "अम्मा जो मुझे आग देने कह गई हैं! तुम पूछ लो न बाबू साब, अम्मा सब किसीसे कह गई है, सबोंने सुना है!" माँकी बात कहते हुए, उसके क्षण क्षणके अनुरोध-उपरोध सब एक साथ याद आ जानेसे उसका कण्ठ मानो रुआईके मारे फट जाने लगा।

अधरने कहा, "अम्माको जलाना चाहता है तो पेड़के दाम पाँच रुपये ले आ सकेगा?"

कंगाली जानता था कि यह असम्भव है। वह अपनी आँखोंसे देख आया था। उसके उत्तरीय खरीदनेके लिए दाम चाहिए थे, सो बिन्दोकी बुआ उसकी भात खानेकी थाली गिरवी रखनेके लिए ले गई है, उसने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं।"

अधरने अपना चेहरा अत्यंत विकृत करते हुए कहा, "नहीं तो माँको ले जाकर नदीके गड्ढेमें गाड़ दे। किसके बापके पेड़पर तेरा बाप कुल्हाड़ी चलाने चला है रे,—पाजी, अभागा बदमाश!"

कंगालीने कहा, "वह तो हम लोगोंके आँगनका पेड़ है बाबूसाब, वह तो मेरी अम्माके हाथका रोपा हुआ पेड़ है।"

"हाथका रोपा हुआ पेड़ है?—पाँड़े, सूअरको गलबहियाँ देके निकाल तो दे यहाँसे।"

पाँड़ेने आकर गरदनियाँ देकर निकालते हुए मुँहसे ऐसी बात कही कि जिसे सिर्फ जमींदारोंके कर्मचारी ही कह सकते हैं।

कंगाली धूल झाड़कर उठा और फिर धीरे धीरे बाहर चला आया। क्यों उसने मार खाई और क्या उसका कसूर था, लड़केकी कुछ समझमें ही न आया।

गुमाश्तेके निर्विकार चित्तपर इसका जरा भी असर न हुआ। अगर होता तो यह नौकरी उसे न मिलती। उलटे उसने फरमाया, "पारस, देखना

जरा इसका लगान बाकी पड़ा है कि नहीं ? बाकी हो तो जाल-वाल कोई छीनकर रखवा देना,—हरामजादा भाग जा सकता है।"

मुखर्जियोंके घर श्राद्ध है,—बीचमें सिर्फ एक दिन बाकी है। धूमधाम और तैयारियाँ खूब जोरोंसे, गृहिणीके श्राद्धके लायक हो रही हैं। वृद्ध ठाकुरदास स्वयं देख रेख करते फिर रहे हैं। कंगाली उनके सामने आ खड़ा हुआ, बोला, "पंडितजी, मेरी मा मर गई है।"

"तू कौन है ? क्या चाहता है तू ?"

"मैं कंगाली हूँ। कह गई है, उसे आग देनेके लिए—"

"सो दे जाकर।"

कचहरीकी घटनाकी खबर इस बीचमें चारों तरफ फैल गई थी। एक आदमीने आकर कहा, । यह लड़का शायद एक पेड़ चाहता है—इतना कहकर उसने वह घटना कह सुनाई।

मुखर्जी साहब आश्चर्य और नाराजीके साथ बोले, "सुनो इसकी, अरे हमें ही कितनी लकड़ी चाहिए,—कल परसों काम ठहरा। जा जा, कुछ यहाँ नहीं होगा। इतना कहकर वे अन्यत्र चले गये।"

भट्टाचार्य महाशय पास ही बैठे फर्द तैयार कर रहे थे, उन्होंने कहा "तेरी जातमें जलाते कब हैं रे ? जा, मुँहमें जरा आग देकर नदीके तड़ामें गाड़ दे।"

मुखर्जी साहबका बड़ा लड़का कामकी जल्दीमें व्यवस्थाके साथ इधरहीसे कहीं जा रहा था, उसने कान खड़े करके जरा सुनकर कहा, "देखते हैं, पंडितजी, सब साले आजकाल बाम्हन-कायथ हो जाना चाहते हैं।" कहकर वह अपने कामसे अन्यत्र कहीं चला गया।

कंगालीने फिर किसीसे प्रार्थना नहीं की। इन दो घंटोंके अनुभवसे दुनियामें वह मानो एकदम बूढ़ा हो गया था। वहाँसे वह धीरे धीरे अपनी माँके पास चला आया।

नदीके तड़ामें गढ़ा करके अभागिनीको सुला दिया गया। राखालकी माँने कंगालीके हाथमें थोड़ा-सा जलता हुआ पुआल देकर उसकी माँके मुँहसे छुलवा दिया। उसके बाद सबने मिलकर मिट्टीसे ढककर कंगालीकी माँका अन्तिम चिह्न तक लुप्त कर दिया।

सब कोई अपने अपने काममें व्यस्त थे। सिर्फ कंगाली,—उस जले हुए पुआलसे जो थोड़ा-बहुत धुआँ घूमता हुआ आकाशमें उड़ रहा था,—उस धुएँकी तरफ एकटक देखता हुआ स्तब्ध खड़ा था।
